आर.एन.आई. नं. 3653/57
मुद्रण तिथि 5 से 8 जनवरी, 2017

वर्ष : 75 अंक : 01
पौष, 2073 मूल्य : 10 रु.

डाक पंजीयन संख्या JaipurCity/413/2015-17
डाक प्रेषण तिथि 10 जनवरी, 2017

ISSN 2249-2011

हिन्दी मासिक

जिनवाणी

शासनप्रभाविका साध्वीप्रमुखा महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. की पावन स्मृति में प्रकाशित 'संलेखना-संथारा' अंक

75 हीरक वर्ष

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं

एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
जयपुर

मंगल-मूल, धर्म की जननी, शाश्वत सुखदा कल्याणी।
द्रोह-मोह-छल-मान-मर्दिनी, फिर प्रगटी यह 'जिनवाणी'॥

संसार की समस्त सम्पदा और भोग
के साधन भी मनुष्य की इच्छा
पूरी नहीं कर सकते हैं।

- आचार्य हस्ती

आवश्यकता जीवन को चलाने
के लिए जरूरी है, पर इच्छा जीवन
को बिगाड़ने वाली है,
इच्छाओं पर नियंत्रण आवश्यक है।

- आचार्य हीरा

जिनका जीवन बोलता है,
उनको बोलने की उतनी जरूरत भी नहीं है।

- उपाध्याय मान

With Best Compliments :

Rajeev Nita Daga Foundation Houston

जिनवाणी

हिन्दी-मासिक

卐 **संरक्षक**
अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ
घोड़ों का चौक, जोधपुर (राज.), फोन-2636763

卐 **संस्थापक**
श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़

卐 **प्रकाशक**
विनयचन्द डागा, मंत्री-सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
दुकान नं. 182-183 के ऊपर, बापू बाजार,
जयपुर-302003(राज.)
फोन-0141-2575997, फैक्स-0141-4068798

卐 **प्रधान सम्पादक**
प्रो. (डॉ.) धर्मचन्द जैन
सामायिक-स्वाध्याय भवन, प्लॉट नं. 2,
नेहरू पार्क, जोधपुर-342003 (राज.)
फोन : 0291-2626279
E-mail : editorjinvani@gmail.com
E-mail : jinvani@yahoo.co.in

卐 **सह-सम्पादक**
नौरतन मेहता, जोधपुर
डॉ. श्वेता जैन, जोधपुर

卐 **भारत सरकार द्वारा प्रदत्त**
रजिस्ट्रेशन नं. 3653/57
डाक पंजीयन सं.-JaipurCity/413/2015-17
ISSN 2249-2011

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

अब्भुट्ठियं रायरिसिं,
पव्वज्जाठाणमुत्तमं।
सक्को माहणरूवेण
इमं वयणमब्बवी।।

-उत्तराध्ययन सूत्र, 9.6

ज्ञानादि गुणों की उच्चभूमि,
उद्यत हो नमि ने गमन किया।
विप्ररूपधारी सुरपति तब,
निकट पहुँच यों कथन किया।।

जनवरी, 2017

वीर निर्वाण संवत्, 2543

पौष, 2073

वर्ष 75 अंक 1

सदस्यता शुल्क

त्रिवार्षिक : 250 रु.
20 वर्षीय, देश में : 1000 रु.
20 वर्षीय, विदेश में : 12500 रु.

स्तम्भ सदस्यता : 21000/-
संरक्षक सदस्यता : 11000/-
साहित्य आजीवन सदस्यता- 4000/-

एक प्रति का मूल्य : 10 रु.

शुल्क/साभार नकद राशि 'जिनवाणी' बैंक खाता संख्या SBBJ 51026632986
IFSC No. SBBJ 0010843 में जमा कराकर जमापर्ची (काउन्टर-प्रति) अथवा ड्राफ्ट भेजने का पता
'जिनवाणी', दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर-302003 (राज.)
फोन नं.0141-2575997, 2571163, फैक्स : 0141-2570753, E-mail:sgpmandal@yahoo.in

मुद्रक : दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जयपुर, फोन- 0141-2562929

नोट- यह आवश्यक नहीं कि लेखकों के विचारों से सम्पादक या मण्डल की सहमति हो।

विषयानुक्रम

शासनप्रभाविका साध्वीप्रमुखा महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. की पावन स्मृति में प्रकाशित 'संलेखना-संथारा' अंक

सम्पादकीय-	जिनवाणी की हीरक यात्रा	-डॉ. धर्मचन्द जैन	5
जीवन-परिचय-	साध्वीप्रमुखा शासनप्रभाविका मैनासुन्दरीजी म.सा. का जीवन परिचय	-श्री गौतमचन्द ओस्तवाल	9
अमृत-चिन्तन-	आगम-वाणी	-सम्पादक	10
प्रवचन-	समाधिमरण क्यों एवं कैसे?	-आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.	12
	दृढ़ता, निर्भीकता एवं समर्पण की धनी थी शासनप्रभाविकाजी	-आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा.	19
	संलेखना-संथारा : मिटती हुई काया से राग-द्वेष को मिटाने की अन्तिम साधना	-तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनिजी म.सा.	26
श्रद्धार्पण -	यशःशरीरेण विराजते	-उपाध्याय श्री रमेशमुनि शास्त्री	21
	संथारा-गीत	-मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनिजी म.सा.	22
	धन्य है संथारा साधिका	-व्या. महासती श्री इन्दुबालाजी म.सा.	29
	अहो! वह संकल्प, समर्पणा, निस्संगता और सजगता	-महासती श्री भाग्यप्रभाजी म.सा.	30
	सच्चिदानन्द बने गुरुणी सा	-श्री यल्लपा, गजेन्द्रगढ़	34
	शासन प्रभाविकाजी की जीवन यात्रा	-श्री नौरतनमल मेहता	46
	'श्रमणी तीर्थ' का गौरव बढ़ाया	-डॉ. दिलीप धींग	50
अंग्रेजी-स्तम्भ-	**Santhara : The Jain Spiritual Practice of Death**	-*Acharya Shri Mahāprajña*	35
शोधालेख -	समाधिमरण : एक तुलनात्मक तथा समीक्षात्मक अध्ययन	-प्रो. सागरमल जैन	38
	सल्लेखना : मृत्यु महोत्सव	-डॉ. राजकुमार छाबड़ा	68
युवा-स्तम्भ -	संलेखना-संथारा : एक पुनर्विचार	-डॉ. धर्मचन्द जैन	59
प्रासंगिक -	संथारा ग्रहण करने की विधि	-श्रीमती रतन चोरडिया	77
	रत्नसंघ के सुदीर्घ संथारे	-श्री नौरतनमल मेहता	78
नारी-स्तम्भ-	महासती मैनासुन्दरीजी : श्राविकाओं की प्रेरणा स्रोत	-श्रीमती सुशीला बोहरा	79
बाल-स्तम्भ -	क्या होता है संथारा?	-श्रीमती कमला हणवन्तमल सुराणा	81
कविता/गीत-	मैना गुरुणी प्यारा है....	-श्री धर्मचन्द जैन	45
	गुरुणी सा हमारी, जिनशासन चमकाये	-श्री वीरेन्द्रकुमार जामड़	49
	मरण वरण है नव-जीवन का	-डॉ. नरेन्द्र भानावत	76
विचार-	समाधिमरण के सोपान	-डॉ. धर्मचन्द जैन	67
साहित्य-समीक्षा-	नूतन साहित्य	-डॉ. श्वेता जैन	84
दीक्षा-कार्ड -	जलगाँव एवं पीपाड़ शहर में आयोज्य दीक्षा-महोत्सव	-संकलित	51
समाचार विविधा-	समाचार-संकलन	-संकलित	86
	साभार-प्राप्ति-स्वीकार	-संकलित	98

सम्पादकीय

जिनवाणी की हीरक यात्रा

❖ डॉ. धर्मचन्द जैन

जिनवाणी मासिक पत्रिका हीरक वर्ष में प्रवेश कर रही है। एक पत्रिका का 75 वर्षों तक निरन्तर प्रकाशन महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होती है। अध्यात्मयोगी, युगमनीषी, स्वाध्याय एवं सामायिक साधना के प्रबल प्रेरक, इतिहास मार्तण्ड पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. उच्चकोटि के विद्वान् एवं साहित्यप्रेमी संत थे। जन-जन में स्वाध्याय की प्रवृत्ति का विकास करने हेतु एवं जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास एवं जीवनमूल्यों के पल्लवन तथा संरक्षण हेतु आपकी दूरदर्शी सत्प्रेरणा से वीर संवत् 2469, विक्रम संवत् 1999 के पौष मास की पूर्णिमा तदनुसार जनवरी, 1943 में **जिनवाणी** मासिक पत्रिका का श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़ से शुभ घड़ी में शुभारम्भ हुआ। उस समय तक सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की स्थापना नहीं हुई थी और देश भी आजाद नहीं हुआ था। जिनवाणी के प्रकाशन का उद्देश्य प्रथम अंक में इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है- "नैतिक व धार्मिक सुविचारों का प्रचार करना, प्राचीन जैन साहित्य का संशोधन एवं अन्वेषण कर उद्धार करना तथा जैनधर्म के पवित्र और आदर्श सिद्धान्तों द्वारा उसकी विश्वहितकारिता सिद्धकर सर्व जन समाज के हृदय में साम्यभाव वर्द्धक धर्मरुचि उत्पन्न करना ही इस पत्रिका का मुख्य ध्येय है।"

उपर्युक्त पावन लक्ष्य को लेकर प्रारम्भ हुई यह पत्रिका आज भी अपने उद्देश्यों को सार्थक कर रही है। इन उद्देश्यों की व्यापकता में विस्तार ही हुआ है। यह पत्रिका पाठक के आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास को केन्द्र में रखकर उसे धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के विभिन्न पहलुओं से परिचित कराती है। यह आगमिक, धार्मिक, वैज्ञानिक दृष्टि से ज्ञानवर्धन करने के साथ पाठक के सोच को भी दिशा प्रदान करती है। जिनवाणी में छपे लेखों को अधिकांश पाठक प्रामाणिक मानते हैं। इसने निरन्तर पाठकों के हृदयों को प्रभावित किया है। आचार्यों, उपाध्यायों, सन्तप्रवरों, साध्वीवृन्द, श्रावकों, विचारकों, कवियों, विद्वानों, अनुसन्धाताओं के प्रवचनों एवं आलेखों के साथ प्रेरक-प्रसंगों, कविताओं, भजनों एवं कथाओं का भी इसमें समावेश होता रहा है।

बालकों, युवाओं एवं नारियों के लिए इस पत्रिका में प्रेरणाप्रद पठनीय सामग्री रहती है। आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, शोधपरक आलेखों के साथ प्रासंगिक विषयों पर भी चिन्तनपरक पाठ्य सामग्री इसकी उपयोगिता में श्री वृद्धि करती है। आगम-वाणी, विचार-वारिधि, आगमिक जिज्ञासा-समाधान एवं तत्त्वचर्चाओं के माध्यम से भी यह पाठकों के स्वाध्याय को समृद्ध करती रही है। जिनवाणी पत्रिका स्थानकवासी परम्परा के एक घटक रत्नसंघ से सम्बद्ध होते हुए भी समस्त जैन समाज का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें सभी जैन परम्पराओं, आचार्यों, सन्तों एवं विद्वानों के वे लेख एवं प्रवचन प्रकाशित होते हैं जो मानवता एवं जीवनमूल्यों का पोषण करते हैं, साथ ही इतिहास एवं संस्कृति के तथ्यों को उद्घाटित करते हैं। प्रायः यह पत्रिका विभिन्न सम्प्रदायों की निन्दा-विकथा से बचकर सत्य को प्रस्तुत करती है। इसलिए जिनवाणी की जैन पत्रिकाओं में साख एवं प्रतिष्ठा है।

'जिनवाणी' पत्रिका ने 75 वर्षों में एक सुदीर्घ यात्रा तय की है, अनेक पड़ावों से गुजरी है। यह अपने एवं समाज के उच्चावचों की साक्षी रही है। इसे आर्थिक एवं व्यवस्था-सम्बन्धी सम्बल प्राप्त होता रहा तथा सम्पादकों का श्रम एवं दृष्टिकोण इसे एक गति प्रदान करता रहा, इसीलिए यह आज इस मंजिल तक पहुँची है। जिनवाणी का प्रथम अंक डॉ. फूलचन्द जैन 'सारंग' के सम्पादन में प्रकाशित हुआ, जिसमें पण्डित बसंत कुमार जैन 'न्यायतीर्थ' एवं श्री चम्पालाल कर्णावट 'विशारद' सहायक सम्पादक थे। आगे चलकर श्री चम्पालालजी कर्नावट ने सम्पादक

का भी दायित्व सम्हाला। पत्रिका का प्रारूप तैयार करने में पं. दुःखमोचनजी झा का भी योगदान रहा। पत्रिका प्रारम्भ में भले ही 32 पृष्ठों में प्रकाशित होती रही, किन्तु सामग्री चयन की दृष्टि से यह शुरु से ही अपने उज्ज्वल भविष्य का शुभ संकेत कर रही थी। सन 1943 के अंकों का अवलोकन करें तो कहा जा सकता है कि इसने समाज को जैन धर्म-दर्शन, इतिहास एवं संस्कृति से परिचित कराने के साथ अहिंसा, स्याद्वाद, श्रावकधर्म आदि के सम्बन्ध में सम्यक् समझ प्रदान की। आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा., आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा., श्रद्धेय श्री मिश्रीमलजी म.सा., श्रद्धेय श्री पुष्करमुनिजी म.सा. आदि अनेक सन्तप्रवरों के व्याख्यान के अंश एवं आलेख इन अंकों की शोभा बढ़ा रहे थे। पूज्य आचार्य श्री हस्ती के कतिपय आलेख एवं विचार 'बटुक' तथा 'एक आत्मार्थी मुनि' नाम से भी दृष्टिपथ में आते हैं। जिनवाणी का प्रत्येक पृष्ठ शिक्षाप्रद एवं ज्ञानवर्द्धक होता था। जैनधर्म में विश्वधर्म बनने की योग्यता है, इस पर विचार प्रकट करते हुए आचार्य श्री हस्ती ने कहा- ''जैनधर्म की दृष्टि से समनस्क प्राणी, चाहे वे पशु-पक्षी हों या मानव, सबको समानता से धर्माराधन का हक मिला हुआ है, इससे विश्वधर्म कहलाने योग्य भी यही जैनधर्म हो सकता है। सत्य के स्वीकार एवं असत्य के तिरस्कार में समर्थ विवेक जिसमें हो वह चाहे मानव हो या पशु, जैन धर्म अंगीकार कर सकता है।'' 'सती-सुभद्रा' के कथानक पर पूज्य आचार्य हस्ती के प्रेरक प्रवचन हुए, जिनका संकलन विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया।

जिनवाणी पत्रिका के उद्देश्य को प्रकट करने हेतु प्रारम्भ में निम्नांकित गाथा प्रकाशित हुई-

'मोक्खमग्गगइं तच्च, सुणेह जिणभासियं।
चउकारणसंजुत्तं नाणं च दंसणलक्खणं।।''

उसी वर्ष जिनवाणी के मई अंक में इसके साथ एक और गाथा जोड़ी गईः-

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गुत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसीहिं।।

जुलाई 1943 में जिनवाणी के उद्देश्य को निम्नांकित काव्य में प्रकट किया गया-

काम-क्रोध मद मोह लोभ को, दिल से दूर भगाने को।
अवनत जग को फिर उन्नति के, पथ पर शीघ्र चढ़ाने को।।
सत्य अहिंसा आदि गुणों का, पूर्ण प्रचार बढ़ाने को।
आई है जिनवाणी जग में, जीवन ज्योति जगाने को।।

जिनवाणी पत्रिका का पाठकों के द्वारा अच्छा स्वागत हुआ। विद्वानों, संतों एवं पाठकों ने अपने अभिमत प्रेषित किए। जून1943 के अंक में 'जिनवाणी पर लोकमत' शीर्षक से अभिमत प्रकाशित हुए। जिनका क्रम आगे के अंकों में भी जारी रहा। संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् विश्वेश्वर स्मृति के रचयिता महामहोपध्याय पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ, जो उस समय पुरातात्त्विक विभाग के अधीक्षक थे, ने जिनवाणी पत्रिका पर अपनी अभिव्यक्ति करते हुए लिखा-

''भोपालगढ़ से प्रकाशित होने वाले 'जिनवाणी' के अप्रेल 1943 के अंक को पढ़कर हर्ष हुआ। पत्र अपने नाम को सार्थक करने वाला और उपादेय है।''

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद के संग्रहाध्यक्ष श्री रामनिधि शर्मा ने लिखा-

''जिनवाणी का अंक सधन्यवाद प्राप्त हुआ। शानदार पत्र है, भविष्य अवश्य उज्ज्वल है कि यह अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल होगा।' सन् 1943 में ही पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के देवलोकगमन होने पर श्री रतनलालजी डोसी-सैलाना ने आचार्यश्री के सम्बन्ध में अक्टूबर 1943 के अंक में 'जवाहिर-ज्योति' शीर्षक से

एक लेख लिखा, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है- ''वर्तमानकाल की विश्व विभूतियों में जैनाचार्य श्री जवाहिरलालजी महाराज भी एक उच्च कोटि की विभूति थे। ऐसा कहना, न तो अत्युक्तिपूर्ण है और न मिथ्या-कल्पना। उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व, वैराग्यमय साधुत्व, मौलिक-विचारधारा, अल्पारम्भ-महारम्भ रूप विवाद के प्रति उनका गंभीर-सचोट विवेचन, आत्यन्तिक श्रद्धामय उनकी ईश्वर भक्ति, राष्ट्रीय-भावना की प्रतीक रूप उनका खादी प्रेम, प्रांजलशैली युक्त प्रसाद गुण संपन्न उनकी साहित्य रचना और समय-समय पर राष्ट्र धर्म के प्रति उनके द्वारा दिये गये व्याख्यानों से प्रकटित उनका राष्ट्रीय नेतृत्व, निस्पृहता पूर्ण उनका आचार्यत्व, अछूतोद्धार भावना, सत्य के प्रति उनका स्नेह और अहिंसा के प्रति उनकी आस्था- ये वे गुण हैं, जो कि उनके जीवन में, मन में, वचन में, कर्म में आत्मा में ओत-प्रोत थे। उनके इन्हीं गुणों ने मुझे लेख की आदि में यह लिखने को विवश किया कि 'वे विश्व-विभूति' थे। श्री स्थानकवासी समाज के दायरे में जीवनयापन नहीं कर यदि राष्ट्रीय-क्षेत्र में जीवनयापन का प्रसंग उपस्थित होता तो पूज्यश्री, महात्मा गाँधी और पं. जवाहरलाल नेहरू के समान ही भारत के राष्ट्रीय क्षितिज पर अपनी दिव्य ज्योति के साथ चमकते एवं यह भी निसंकोच कहा जा सकता है कि उस दशा में भी इनकी कार्य प्रणाली और साधन अहिंसा एवं सत्य ही रहते।''

भोपालगढ़ से प्रकाशित होने वाले इन अंकों की व्यवस्था में श्री विजयमलजी कुम्भट एवं श्री दौलतरूपचन्दजी भण्डारी-जोधपुर का व्यवस्था सम्भालने में विशेष योगदान रहा। श्री जैन रत्न विद्यालय के प्रारम्भ होने के 14 वर्ष पश्चात् यह पत्रिका प्रारम्भ हुई। यद्यपि उस समय विद्यालय की विशेष संतोषजनक स्थिति नहीं थी, फिर भी शाह नवरतनमलजी धनपतसिंहजी भाण्डावत-जोधपुर, सेठ सागरमलजी-गाँव घाणा जिला-जोधपुर, लाला रतनचन्दजी हरजसरायजी जैन-अमृतसर, सेठ ताराचन्दजी गेलड़ा-कुचेरा, लाला बनारसीदासजी जैन-देहली, सेठ प्रेमराजजी गणपतराजजी बोहरा-पीपलिया, सेठ सतीदासजी भीकमचन्दजी कांकरिया-जोधपुर, लाला जगन्नाथजी जैन-बम्बई, श्री रतनलालजी जुगराजजी जैन-बरेली, सेठ कुन्दनमलजी जसराजजी गुगले-अहमदनगर जैसे समाज नायकों के विश्वास और बल पर संस्था द्वारा पत्रिका का प्रारम्भ किया गया। ये सभी जिनवाणी के आजीवन सदस्य भी बने।

जिनवाणी की आजीवन सदस्यता प्रारम्भ में 101 रुपये तथा सहायक सदस्यता 51 रुपये थी। वार्षिक सदस्यता 3 रुपये एवं 1 अंक का मूल्य छह आना था। 32 पृष्ठों में यह पत्रिका (20X30X8 के आकार में) श्री सुमेर प्रिण्टिंग प्रेस, फुल्लारोड़, जोधपुर से प्रकाशित होती थी एवं वितरण भोपालगढ़ से ही होता था। नवम्बर 1946 में जयपुर के जिलाधीश से मुद्रण की आज्ञा प्राप्त कर सात अंक जयपुर से प्रकाशित हुए, जिनका वितरण भोपालगढ़ से ही हुआ। अक्टूबर 1948 से पत्रिका का प्रकाशन सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा मेड़तिया गेट, जोधपुर स्थित जिनवाणी कार्यालय से किया गया, जिसकी व्यवस्था में श्री विजयमलजी कुम्भट और श्री माधोमलजी लोढ़ा का सहयोग बना रहा।

जिनवाणी के प्रारम्भिक वर्षों में द्वितीय विश्व युद्ध (1939-1945) चल रहा था, जिसके सम्बन्ध में जिनवाणी पत्रिका में विभिन्न रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं। पण्डित शंशिकांत झा की कविता में इसकी झांकी द्रष्टव्य है।

''छिड़ी लड़ाई आज जगत में, उलझ रहे जन बन सेनानी।
एक-दूसरे पर ईर्ष्या से, जगती ने है बर्छी तानी।।
चारों ओर छिटकती ज्वाला, क्रुद्ध बनी है युद्ध भवानी।
अस्त-व्यस्त होता भूतल है, भू लुण्ठित होती रजधानी।।''

एक अंक की सम्पादकीय टिप्पणी में डॉ. सारंग द्वारा लिखा गया- ''संसार के सभी छोटे-बड़े राष्ट्र इस

क्षण युद्ध-यज्ञ में यथाशक्ति आहुति देते दिखाई पड़ रहे हैं। युद्ध सामग्री उत्पादन के लिए आज हर देश अस्त-व्यस्त है। पेट काटकर नंगे रहकर भी संसार युद्धोद्योग जारी रखने में तत्पर है, किन्तु इस युद्ध ने काल की तरह कितने देशों का गला घोंट डाला, कितने शहरों को नहरों में परिणत कर दिया, कितने गगनचुंबी प्रासादों को खण्डहर कर छोड़ा, कितने फल-पुष्प समन्वित बागों में आग लगा डाली, कितनी माँ की गोदी को इसके लालों ने वंचित कर दिया, कितनी सुहागिनों की सिन्दुर धो डाली, कितनी आबादी को वीरान कर डाला, कितने भूखों के आगे का ग्रास छीन लिया, कितने सभ्यों को वस्त्रविहीन कर दिया। फिर भी युद्ध का अवसान समीप नहीं दिखता।''

समाज का विकास कैसे हो ? इस सम्बन्ध में भी चिन्तन निरन्तर प्रकाशित होता रहा। श्री महेशचन्द जैन ने जून 1943 के अंक में सामाजिक विकास को तीन भागों में विभाजित किया है- 1. शारीरिक, 2. बौद्धिक, 3. आध्यात्मिक। शारीरिक विकास के लिए उन्होंने सात्त्विक भोजन, स्वच्छता एवं व्यायाम को आवश्यक बताया है। वे उस समय के युवकों का वर्णन करते हुए कहते हैं- ''जैनियों में व्यायाम का प्रचार न होने के कारण नवयुवकों के चेहरे पीले पड़ रहे हैं। उनके चेहरे पर कांति दिखाई नहीं देती, गाल पिचके हुए हैं। वे इतने दुर्बल हैं कि चलते-चलते ही पाँव लड़खड़ाते हैं। अपने बच्चों को स्वस्थ एवं नीरोग बनाने के लिए स्कूलों की तरह प्रत्येक गाँव, नगर व शहर में व्यायाम शालाएँ स्थापित करनी चाहिए, जिनमें व्यायाम सीख कर बच्चे अपने शरीर को सुदृढ़ बनाएँ और वीर प्रभु के सच्चे उपासक बनें। सच्चे बहादुर ही धर्म के उपासक हो सकते हैं। आत्मरक्षा करना कोई पाप नहीं है। स्वास्थ्य के सम्बन्ध में समय-समय पर भाषण हो और नीरोग रहने के उपाय भी बताये जाएं। बौद्धिक विकास के लिए मनोविज्ञान का आश्रय लेकर शिक्षण देना आवश्यक है, जिससे डाँट-डपट की आवश्यकता न रहे। आध्यात्मिक विकास के लिए आत्मिक गुणों का अवलम्बन लेना आवश्यक है। सामायिक, प्रतिक्रमण आदि भी आध्यात्मिक विकास प्राप्त करने के साधन है।''

पूज्य श्री मिश्रीमलजी महाराज ने जिनवाणी को पढ़ने एवं पढ़ाने की प्रेरणा करते हुए प्रेरक रचना की। जिसके प्रथम अक्षर थे- **'जिनवानी सुहावनी-पढ़ो-पढ़ालो प्रेम से।'** यथाः-

जि- जितने जग में गुण हों उन पर, अपना अति अधिकार रहे।
न- नम्र बनें हम सेवाभावी, जीवन सारा सजग रहे।
वा- बातों के राजा न बनें हम, कार्यकुशल गंभीर बनें,
नी- नीर क्षीर विवेकी बनकर, श्रद्धाधारी धीर बनें।

साहित्य-संसार अथवा साहित्य-कुसुम नाम से नवप्रकाशित साहित्य की समीक्षा का स्तम्भ प्रारम्भ से रहा। पूज्य आचार्यश्री हस्ती द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र, दशवैकालिकसूत्र, पूज्य जवाहराचार्य द्वारा रचित जवाहर किरणावली आदि का परिचय इसकी पुष्टि करता है। बाल जगत् एवं महिला संसार के अन्तर्गत बालकों के लिए कथाएँ एवं महिला संसार के अन्तर्गत नारी के उत्थान के सम्बन्ध में रचनाओं को स्थान प्रदान किया गया। आगमवाणी को 'जिनवाणी का झरना' शीर्षक से प्रकाशित किया जाता था। सम्पादक के द्वारा 'सम्पादकीय-वाटिका' के अन्तर्गत अपने विचार प्रस्तुत किए जाते रहे। जिनवाणी को एक स्तरीय पत्रिका बनाने का ध्येय प्रारम्भ से ही रहा। सम्पादक डॉ. फूलचन्द जैन 'सारंग' ने द्वितीय अंक में लिखा था- ''बन्धुओं! जिनवाणी पत्रिका को हम वर्तमान में जिस रूप में देख रहे हैं, उससे कहीं अधिक ऊँचे स्टेण्डर्ड की बनानी है। इसे हम जैन जगत् की मासिक पत्रिका का रूप देना चाहते हैं। हमें अपनी इस विशाल और व्यापक योजना में तभी सफलता विशेष मात्रा में मिल सकती है जब कि जैन विद्वानों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो।'' **(क्रमशः)**

सोलह दिवसीय संथारापूर्वक दिवंगत शासनप्रभाविका साध्वी-प्रमुखा विदुषी महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. का जीवन परिचय

वीर पिता	:	स्व. श्री रिडमलजी भण्डारी
वीर माता	:	स्व. श्रीमती जतनकंवरजी भण्डारी
मूल निवासी	:	बारनी खुर्द, भोपालगढ़, जिला-जोधपुर (राज.)
जन्म स्थान	:	मद्रास (चेन्नई) कोण्डीतोप में
जन्म तिथि	:	आषाढ़ सुदि 2, वि.सं. 1990, 25 जून 1933
दीक्षा तिथि	:	माघ सुदि 13, वि.सं. 2003, सन् 1946
दीक्षा स्थल	:	बारनी खुर्द, भोपालगढ़, जिला-जोधपुर (राज.)
दीक्षा प्रदाता	:	पूज्य आचार्य भगवन्त श्री 1008 श्री हस्तीमलजी म.सा.
दीक्षा गुरुणीजी	:	प्रवर्तिनी वयोवृद्ध महासती श्री बदनकंवरजी म.सा.
सहोदरा दीक्षित बहिन	:	सरलमना व्याख्यात्री महासती श्री सायरकंवरजी म.सा.
भाषा ज्ञान	:	हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी आदि।
विहार क्षेत्र	:	राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश आदि प्रांतों में लगभग एक लाख किलोमीटर का पैदल विहार व विचरण।
विशेषताएँ	:	रत्नसंघ की साध्वीप्रमुखा, शासनप्रभाविका, विदुषी महासती, प्रखर व्याख्यात्री, रत्नसंघ में सर्वाधिक साध्वियों की गुरुणीजी, ओजस्वी प्रवचन कला में निपुण, जैन सिद्धान्त व आगम की गहन ज्ञात्री आदि।
सहवर्ती साध्वी विशेष एवं शिष्याएँ आदि	:	तत्त्वचिन्तिका महासती श्री रतनकंवरजी म.सा. कोकिल कंठी व्याख्यात्री महासती श्री चन्द्रकलाजी म.सा. व्याख्यात्री महासती श्री शांतिप्रभाजी म.सा. व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलताजी म.सा. सेवाभावी महासती श्री दर्शनलताजी म.सा. तपस्विनी व्याख्यात्री महासती श्री चारित्रलताजी म.सा. आदि।
स्वेच्छापूर्वक संथारा ग्रहण	:	मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी, सोमवार, 21 नवम्बर 2016 को पावटा-जोधपुर में श्रद्धेय श्री मनीषमुनिजी म.सा. द्वारा चतुर्विध संघ की साक्षी में तिविहार संथारा का प्रत्याख्यान।
चौविहार संथारा	:	उपाध्याय श्री मानचन्द्रजी म.सा. द्वारा मंगलवार, 06 दिसम्बर 2016 को दिन में 2.45 बजे।
संथारा पूर्ण	:	मंगलवार, 06 दिसम्बर 2016 सायं 4.30 बजे लगभग।
महाप्रयाण यात्रा	:	बुधवार, 07 दिसम्बर 2016 को प्रातः 9 बजे प्रारम्भ हुई।
कुल उम्र (आयुष्य)	:	83 वर्ष एवं **दीक्षा पर्याय** : 70 वर्ष

-संकलन : श्री गौतमचन्द ओस्तवाल, बैंगलुरु

अमृत-चिन्तन

आगम-वाणी

यावज्जीवन संथारा भी आगार सहित सम्भव

प्रायः यह धारणा है कि यावज्जीवन के लिए संलेखना-संथारा का पाठ बोलने के पश्चात् संथारे में आगार नहीं रखा जाता है। वह संथारा जीवनभर के लिए होता है, किन्तु अंतगडदसासूत्र में सेठ सुदर्शन श्रावक ने यावज्जीवन के लिए सर्व प्राणातिपात आदि का त्याग एवं अशनादि चारों आहारों का त्याग करके भी उस संथारे में यह पाठ बोला था कि यदि मैं अर्जुनमाली के द्वारा उत्पन्न उपसर्ग (कष्टप्रद घटना) से मुक्त हो जाऊँगा तो इस संथारे को पार लूँगा, यदि मुक्त नहीं हुआ तो उस प्रत्याख्यान का निर्वाह करूँगा। अंतगडदसासूत्र में प्राप्त पाठ इस प्रकार है-

पुव्विं च णं मए भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए-3 थूलए मुसावाए, थूलए अदिण्णादाणे, सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छा परिमाणे कए जावज्जीवाए। तं इयाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं मुसावायं, सव्वं अदिण्णादाणं, सव्वं मेहुणं, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए।

सूत्र 12-जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारेत्तए, अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि तओ मे तहा पच्चक्खाए चेव त्ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ।- अंतगडदसासुत्त, वर्ग 6, अध्ययन 3

अर्थ- मैंने पहले श्रमण भगवान महावीर के पास स्थूलप्राणातिपात का आजीवन त्याग (प्रत्याख्यान) किया, स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान का त्याग किया, स्वदार सन्तोष और इच्छा परिमाण रूप स्थूल परिग्रह विरमण व्रत जीवन-भर के लिये ग्रहण किया, अब उन्हीं भगवान महावीर स्वामी की साक्षी से सम्पूर्ण प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और सम्पूर्ण-परिग्रह का सर्वथा आजीवन त्याग करता हूँ। (क्रोध, मान, माया, लोभ यावत् मिथ्यादर्शन शल्य तक 18 पापों का भी सर्वथा आजीवन त्याग करता हूँ।) सब प्रकार का अशन, पान, खादिम और स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ।

यदि मैं इस उपसर्ग (उपस्थित विपत्ति) से बच गया तो मुझे इस त्याग का पारणा करना कल्पता है। पर यदि इस उपसर्ग से मुक्त न होऊँ, न बचूँ तो मुझे इस प्रकार का सम्पूर्ण त्याग यावज्जीवन है। ऐसा निश्चय करके उन सुदर्शन सेठ ने उपर्युक्त प्रकार से सागारी पडिमा अनशन व्रत धारण कर लिया।

विवेचन-अंतगडदसासूत्र के अन्तर्गत उल्लेख आता है कि अर्जुनमाली यक्ष से आविष्ट होकर प्रतिदिन 6 पुरुषों एवं 1 स्त्री की हत्या कर रहा था। उन्हीं दिनों प्रभु महावीर का राजगृही नगरी के गुणशीलक उद्यान में पदार्पण हुआ। गुणशीलक उद्यान में जाने का मार्ग उसी पुष्पाराम से होकर जाता था, जहाँ वह अर्जुनमाली हिंसा का ताण्डव कर रहा था। अतः सुदर्शन श्रावक को उनके माता-पिता ने प्रभु दर्शनार्थ जाने से बहुत रोका, किन्तु सुदर्शन श्रावक श्रद्धा-भक्ति की पराकाष्ठा के कारण उस खतरे का सामना करते हुए भी प्रभु दर्शन के लिए निकल पड़ा एवं पुष्पाराम में जाकर सर्व प्राणातिपात, सर्व मृषावाद, सर्व अदत्तादान, सर्व मैथुन एवं सर्व परिग्रह का पुनः प्रभु महावीर की साक्षी से यावज्जीवन त्याग करता है, साथ ही सर्व अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम इन चतुर्विध आहारों का जीवन भर के लिए त्याग कर देता है। यह करते हुए भी वह संकल्प करता है कि यदि मैं इस उपसर्ग (विपत्ति) से मुक्त हो जाऊँगा

तो इस त्याग को पार लूँगा, ऐसा चिन्तन कर सागार प्रतिमा अंगीकार करता है। सुदर्शन सेठ के द्वारा सागार प्रतिमा अंगीकार करना इस तथ्य को पुष्ट करता है कि जावज्जीवं(यावज्जीवन) के पाठ से गृहीत संथारे में भी आगार रखे जा सकते हैं। आज जो संथारे को लेकर विमर्श चल रहा है, उसमें यह बिन्दु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि विकट स्थिति में यावज्जीवन संथारा ग्रहण करके भी उसमें आगार रखे जा सकते हैं। यावज्जीवन के पाठ के औचित्य का प्रश्न उठे तो कहा जा सकता है कि यदि वह सुदर्शन सेठ कदाचित् मृत्यु के मुख में चला जाता तो यावज्जीवन का त्याग आवश्यक था। यहाँ यह ध्यातव्य है कि विशेष परिस्थिति में गृहीत संथारे में ही आगार रखा जा सकता है, सामान्य परिस्थिति में तो उसका यावज्जीवन पालन करना ही अभीष्ट है।**- सम्पादक**

(संथारगपइण्णयं (संस्तारक प्रकीर्णक) से संथारा विषयक कतिपय गाथाएँ)

एस किराऽऽराहणया, एस किर मणोरहो सुविहियाणं।
एस किर पच्छिमंते पडागहरण-सुविहियाणं।।2।।

अर्थः-यह आराधना (समाधिमरण) सुविहितों अर्थात् संयमीजनों के जीवन का साध्य (मनोरथ) है। जीवन के अन्तिम भाग में इसे स्वीकार करना निश्चय ही संयमीजनों के लिए विजय-पताका फहराने के समान है।

वेरुलिओ व्व मणीणं, गोसीसं चंदणं व गंधाणं।
जह व रयणेसु वइरं, तह संथारो सुविहियाणं।।4।।

अर्थः- जिस प्रकार मणियों में वेडूर्यमणि, सुगन्धित पदार्थों में गोशीर्ष चन्दन तथा रत्नों में वज्र श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार संयमीजनों के लिए मरणों में समाधिमरण श्रेष्ठ है।

पुरिसवरपुंडरीओ अरिहा इव सव्वपुरिससीहाणं।
महिलाण भगवईओ जिणजणणीओ जयम्मि जहा।।5।।

अर्थः- जिस प्रकार सभी श्रेष्ठ पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान अर्हन्त तथा संसार की सभी महिलाओं में तीर्थंकरों की माताएँ पूज्या हैं, उसी प्रकार संयमी जीवन में समाधिमरण श्रेष्ठ है।

सियकमल-कलस-सुत्थिय-नंदावत्त-वरमल्लदामाणं।
तेसिं पि मंगलाणं संथारो मंगलं पढमं।।15।।

अर्थः- श्वेतकमल, कलश, स्वस्तिक, नन्दावर्त्त और सुन्दर पुष्प मालाएँ मंगल रूप हैं, किन्तु उन सभी मंगलों में भी समाधिमरण (संथारा) प्रथम मंगल है।

सुविहियगुणवित्थारं संथारं जे लहंति सप्पुरिसा।
तेसि जियलोयसारं रयणाहरणं कयं होइ।।21।।

अर्थः- संयमी जीवन के गुणों के विस्तार रूप समाधिमरण को जो सत्पुरुष स्वीकार करते हैं, वस्तुतः उन्होंने संसार के सारतत्त्व को प्राप्त कर लिया है, उनके संयम रूपी रत्न का आहरण कैसे हो सकता है?

चंदो व्व पिच्छणिज्जो, सूरो इव तेयसा उदिप्पंतो।
धणवंतो गुणवंतो, हिंमवंतमहंतविक्खाओ।।28।।

अर्थः- गुप्ति एवं समिति सहित संयम, तप, नियम और योग युक्त मनवाला तथा ज्ञान, दर्शन की आराधना में एकाग्रचित्त वाला, समाधि-भाव को प्राप्त श्रमण चन्द्रमा की तरह प्रेक्षणीय और सूर्य के तेज की तरह देदीप्यमान होता है।

प्रवचन

समाधिमरण क्यों एवं कैसे?

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.

मरण कैसा हो?

संसार में शायद ही कोई ऐसा प्राणी हो जो मरण को नहीं जानता हो। छोटे से छोटे कीट, पतंग से लेकर नरेन्द्र, असुरेन्द्र और देवेन्द्र तक भी इसके प्रभाव से प्रभावित हैं।

भयंकर से भयंकर रोग में फंसने वाला असहाय रोगी भी मरना नहीं चाहता। भले उसे कितना ही रोग, शोक, वियोग या अपमान सहना पड़े। फिर भी वह प्राणी यही चाहेगा कि मरूँ नहीं। कारण कि मरण सबसे बड़ा भय है। कहा भी है- **मरणसमं नत्थि भयं।** मरण से बचने के लिये मनुष्य हर संभव उपाय करने को तैयार रहता है। उसने मृत्युंजय और महामृत्युंजय के भी पाठ कराये, सुसज्जित सेनाओं के बीच अपने को सुरक्षित रखा, फिर भी मरण से नहीं बच पाया। मरण के सामने मंत्र-बल, तंत्र-बल, यंत्र-बल और शस्त्र-बल सभी बेकार हैं। कहावत भी है- **'काल बेताल की धाक तिहुं लोक में।'** सच है जगत् के जीव मात्र मरण का नाम सुनते ही रोमांचित हो जाते हैं।

ज्ञानी कहते हैं- **'मृत्योर्बिभेषि किं मूढ ?'** मूर्ख! मृत्यु से क्यों डरता है? यह तो पुराना चोला छोड़कर नया धारण करना है। इसमें भयभीत होने की क्या बात है। निर्भय और निर्मल भाव से कर्त्तव्य पालन कर, फिर देख कि मरण भी तेरे लिये मंगल महोत्सव बन जायेगा।

अतः यह जानना आवश्यक है कि मरण क्या है और वह कितने प्रकार का है तथा उत्तम मरण कैसा होना चाहिये? जैन शास्त्र कहते हैं कि संसार का कोई भी द्रव्य सर्वथा नष्ट नहीं होता। अतः प्रश्न होता है कि 'मरण' जिसको कि नाश कहते हैं, कैसे संगत होगा? चूंकि द्रव्य का लक्षण 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' कहा है। उसका कभी नाश नहीं होता, तब मरण क्या हुआ? यहाँ मरण का अर्थ आत्यन्तिक तिरोभाव या अदर्शन है। जब आयु पूर्ण कर जीव किसी शरीर से अलग होता है यानी जीव या प्राणों का शरीर से सर्वथा सम्बन्ध छूट जाता है, उसे मरण कहते हैं। यद्यपि आत्मा अजर, अमर और अजन्मा है। वास्तव में उसका न जन्म है और न मरण, फिर भी संथारावस्था में शरीरधारी जीव का शरीर की अपेक्षा जन्म और मरण कहा जाता है। संक्षेप में कहना चाहिये कि वर्तमान शरीर को छोड़कर जीव का प्रयाण कर जाना ही मरण है।

जैन शास्त्रों में मरण पर बहुत गम्भीर विचार किया गया है। श्री स्थानांग, श्री भगवती, श्री उत्तराध्ययन आदि अंगोपांग सूत्रों के अतिरिक्त जैनाचार्यों ने मरण पर स्वतंत्र प्रकरण भी लिखे हैं। मरणविभत्ति, भत्तपच्चक्खाण और समाधिमरण उनमें खास उल्लेख योग्य हैं।

यह निश्चित है कि संसार में दृष्टिगोचर होने वाले पदार्थ मात्र एक दिन विलय होने वाले हैं। अचेतन में हर्ष एवं शोक के भाव उत्पन्न नहीं होते। चेतन होने से जीव को ही हर्ष एवं शोक होते हैं। इसलिए यहाँ इसी के मरण का विचार करना है। आत्मदर्शी महात्माओं ने कहा है कि मरण केवल दुःखदायी ही नहीं, वह सुखप्रद भी होता है।

अज्ञानी और ज्ञानी की दृष्टि से मरण भी बुरा और भला होता है। अज्ञानी पर्याय दृष्टि प्रधान होने से प्राण-वियोग पर रोता और दुःख करता है, वहाँ ज्ञानी दिव्यदृष्टि की प्रधानता से धन, जन, प्राण के वियोग में भी प्रसन्न रहता है, सदा समरस रहता है। ठीक ही कहा है कि अज्ञानी मरण से डरते हैं, जबकि ज्ञानी उसको सहर्ष गले लगाते

हैं। कारण, ज्ञानी समझता है कि मैं तो त्रिकाल सत्य हूँ, इस शरीर के पहले भी था, अब भी हूँ और शरीर छूटने पर भी रहूँगा, फिर सुकृताचरण से मैं कृतकृत्य हो चुका हूँ, अतः मुझे मरण से घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। कहा भी है- "**मरणादपि नोद्विजते कृतकृत्योऽस्मीति** "। शास्त्रों में मरण का विस्तार से निरूपण हुआ है।

मरण के प्रकार

भगवती सूत्र में मरण के पाँच प्रकार बतलाए हैं- 1. आवीचिमरण, 2. अवधिमरण, 3. आत्यन्तिकमरण, 4. बालमरण, 5. पंडितमरण। प्रथम तीन प्रकार के मरण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव के भेद से पाँच-पाँच प्रकार के बतलाये गये हैं।[1] प्रति समय आयुकर्म के दलिकों का क्षीण होते जाना यह आवीचिमरण है। नरक आदि भव की स्थिति पूर्ण कर जो तत्-तत् भवानुबन्धी सामग्री का त्याग किया जाता है यह अवधिमरण है और एक बार मरने के बाद फिर उस भव से नहीं मरना यह आत्यन्तिकमरण है।

स्थानांग सूत्र में पण्डित मरण के तीन प्रकार बतलाये हैं।[2] जैसे- 1. बालमरण, 2. पण्डितमरण, 3. बालपण्डितमरण। विवेकरहित अविरत जीव का मरण बालमरण, तत्त्वज्ञानी संयमी का मरण पण्डितमरण और सम्यग्दृष्टिव्रती गृहस्थ का मरण बालपण्डित-मरण कहलाता है। परिणामों के स्थित, अस्थित और वर्धमान शुभाध्यवसायों से प्रत्येक के तीन-तीन भेद होते हैं।

बालमरण- बालमरण जन्म-मरण की वृद्धि का कारण है। अतएव श्रमण भगवान श्री महावीर ने कहा है कि तपस्वी निर्ग्रंथों को ऐसे मरण से नहीं मरना चाहिये। ये मरण निम्न प्रकार हैं[3]- 1. वलयमरण, 2. वशार्तमरण, 3. निदानमरण, 4. तद्भवमरण, 5. गिरिपतन, 6. तरुपतन, 7. जलप्रवेश, 8. अग्निप्रवेश, 9. विषभक्षण, 10. शस्त्रघात, 11. वेहायस, 12. गृद्धपृष्ठमरण। इनका स्वरूप इस प्रकार है-

1. भूख-प्यास आदि परीषहों से घबराकर असंयम सेवन करते मरना वलयमरण है। 2. पतंग आदि की तरह शब्दादि विषयों के अधीन होकर मरना वशार्तमरण है, जैसे किसी कामिनी के पीछे कामी का प्राण गंवाना, 3. ऋद्धि आदि की प्रार्थना करके सम्भूति मुनि की तरह मरना निदानमरण है। 4. जिस भव में है उसी जन्म (योनि) का आयु बांध कर मरना तद्भवमरण है। 5. पर्वत से गिरकर मरना। 6. वृक्ष से लटक कर मरना। 7. जल में डूब कर मरना। 8. आग में सती आदि की तरह जीते जल मरना, 9. विष खाकर मरना। 10. शस्त्र से आत्महत्या कर लेना। 11.फांसी लेकर मरना। 12. पशु के कलेवर में गीध आदि का भक्ष्य बन कर मरना उक्तमरण के लक्षण हैं।

उपर्युक्त 12 प्रकार के मरण से मरने वाला जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के अनन्त-अनन्त जन्म करता हुआ चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करता है। इस प्रकार यह 'बाल-मरण' संसार को बढ़ाने वाला है। भगवान् महावीर कहते हैं- 'कौटुम्बिक झगड़ों से तंग आकर यश, धन-हानि, जन-हानि और मान-हानि की व्याकुलता में मरना दुःख को घटाना नहीं, बढ़ाना है' - यह पण्डितमरण नहीं, बालमरण है।

माता, पिता, पुत्र या पति, पत्नी आदि प्रियजन के वियोग में मर जाना अथवा मृत पति के साथ जीते हुए जल जाना भी उत्तम मरण नहीं है। बहुत सी बार मनुष्य शोक, मोह और अज्ञान के वश भी प्राण गंवा देता है। व्यापार, धंधे में हानि उठाकर लेनदारों को-देने की अक्षमता से सैंकड़ों ने मान-प्रतिष्ठा की आग में प्राणों की बलि कर दी और करते जाते हैं। अर्थाभाव में पारिवारिक भरण-पोषण और कर्जदारी की चिन्ता से भी कई हलाहल पीकर मरण की शरण ले लेते हैं। घर के लड़ाई-झगड़ों से तंग आकर और दुःख में ऊबकर भी कई ललनाएँ तेल छिड़क कर मरती हैं। नौकरी नहीं मिलने से कई शिक्षित युवक और परीक्षा में फेल होकर कई विद्यार्थी प्रतिवर्ष जीवन समाप्त करते सुने जाते हैं। इस प्रकार इच्छा से मरने वालों की संख्या कम नहीं है। वास्तव मे ये सब अकाम-मरण या बालमरण हैं। इस प्रकार

चिन्ता, शोक या अभाव में झुलस कर कई मानव जीवन-लीला समाप्त करते हैं। सचमुच यह देश और समाज के लिए कलंक की बात है। समाज और राष्ट्रनायकों को इसका उचित हल निकालना चाहिये। ऐसे अविवेकपूर्वक अकाममरण से मरना दुःख घटाने वाला नहीं होता। इससे तत्काल ऐसा प्रतीत होता है कि मर जाने से मैं अपनी आँखों से यह दुःख नहीं देख पाऊँगा, किन्तु उसे ध्यान रखना चाहिये कि अकाममरण से वर्तमान का दुःख लाखों गुणा होकर फिर सामने आ सकता है। जबकि आज का विचारपूर्ण समर्थ मन भी नहीं रह पाता। सही बात यह है कि दुःख भागने से नहीं छूटता, वह तो शान्तिपूर्वक भोगने से छूटता है।

पंडितमरण

'भगवती सूत्र' के द्वितीय शतक, प्रथम उद्देशक में प्रभु ने खंदक संन्यासी को मरण का स्वरूप बतलाते हुए कहा है- पण्डितमरण दो प्रकार का है- पादोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान। नीहारिम और अनीहारिम रूप से पादोपगमन दो प्रकार का है। यह प्रतिकर्म रहित ही होता है। भक्तप्रत्याख्यान नीहारिम और अनीहारिम दोनों प्रकार का सप्रतिकर्म होता है- अर्थात् इसमें शरीर की हलन-चलन रूप चेष्टाएँ तथा सार-सम्भाल होती है। इन दोनों प्रकार के पण्डित मरण से मरने वाला जीव अनन्त-अनन्त नरक, तिर्यंच आदि के जन्म-मरण से आत्मा को विमुक्त करता यावत् संसार को पार करता है। भक्त प्रत्याख्यान आदि का स्वरूप एवं भेद निम्न दिये जाते हैं-

भक्त प्रत्याख्यान- जिसमें तीन या चार प्रकार के आहारमात्र का त्याग होता है और शरीर का हलन-चलन बन्द नहीं किया जाता, उसे भक्तप्रत्याख्यान कहते हैं।

इंगितमरण एवं पादपोपगमन- इसमें सर्वथा खाने-पीने का त्याग किया जाता है और मर्यादित क्षेत्र के अतिरिक्त शरीर से गमनागमन आदि चेष्टा भी नहीं की जाती है। पादोपगमन में यह विशेषता है कि वह शरीर की कोई चेष्टा नहीं करता, न करवट बदलता है। दूसरा भले ही कोई उसे इधर से उधर बैठा दे या करवट बदल दे, किन्तु स्वयं कोई चेष्टा नहीं करता, वृक्ष की तरह अडोल पड़ा रहता है।

भक्त प्रत्याख्यान में जलाहार लिया जाता है और वह सागारी भी होता है, किन्तु इंगितमरण और पादोपगमन में कोई आगार नहीं होता, न कोई जलाहार ही ग्रहण किया जाता है। भक्तप्रत्याख्यान सर्वदा सबके लिये सुलभ है, परन्तु इंगितमरण एवं पादोपगमन प्रथम 3 संहनन में और विशिष्ट श्रुतधारी को ही होते हैं। 'व्यवहार भाष्य' में कहा है कि सभी आर्या और सब प्रथम संहननहीन जीव तथा देशविरति जीव भक्त प्रत्याख्यान को ही प्राप्त करते हैं।

पादोपगमन वाले को कभी पूर्वभव के वैर से कोई देव पातालकलशों में संहरण करदे तो वह उपसर्ग को सम्यक् प्रकार से सहन करता है। उस समय ऐसा सोचता है कि जैसे तलवार म्यान से भिन्न है, वैसे ही जीव शरीर से भिन्न है, अतः उपसर्ग से मेरी हानि नहीं होती। जैसे मेरु पूर्वादि चारों दिशा की प्रचण्ड वायु से कम्पित नहीं होता, वैसे पादोपगमन वाला उपसर्ग में भी ध्यान से चलायमान नहीं होता है। इनका आदर्श होता है उग्रतम कष्ट के समय भी अविचल रहकर मरण का आलिंगन करना। देखिये, कृष्ण वासुदेव के लघु भाई गजसुकुमाल ने मरणान्त कष्ट के समय भी कैसी अखण्ड शान्ति कायम रखी। भगवान् नेमिनाथ की अनुमति लेकर जब महामुनि महाकाल श्मशान में ध्यान लगाकर देहभान को भुलाकर आत्मध्यान में तल्लीन हो गये उस समय सोमिल ब्राह्मण उधर से निकला और महामुनि को देखते ही क्रोध से जल उठा। उसने गीली मिट्टी लेकर मुनि के सिर पर बाँधी तथा अंगार रख दिये। सिर जलने लगा और नसें खिंचने लगीं, फिर भी मुनिजी के मन में उफ तक नहीं, क्योंकि उन्होंने क्रोध, मान, माया, लोभ के आंतर विकारों को जला दिया एवं प्राणिमात्र को आत्मसम समझ लिया था। अन्तर में एक ही आवाज गूँजती थी कि- ''मैं एक और शाश्वत हूँ। मेरा स्वरूप ज्ञान-दर्शन है। धन, दारा और परिवार आदि सब बाह्यभाव पर हैं और वे

संयोग-सम्बन्ध से अपने व पराये होते हैं। वास्तव में ये मेरे नहीं, ज्ञान, दर्शन रूप उपयोग स्वभाव ही मेरा है। जो न कभी जलता है और न कभी गलता है।''

''एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसणसंजुओ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।।''

अंग-अंग के जलने पर भी गजसुकुमाल की प्रसन्नता अविचल रही और उन क्षणों में ही अखण्ड समाधिमरण के साथ उन्होंने सकल कर्मक्षय कर मुक्ति प्राप्त करली।

पण्डितमरण के अधिकारी

वे लोग इसके अधिकारी नहीं होते, जिनका जीवन हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि पापों में रचा-पचा होता है, जो अजितेन्द्रिय होकर अभक्ष्य भक्षण करते और विषय-कषाय में रति करते हैं। ऐसे असंयमशील प्राणियों का अन्तिम समय में हाहाकार करते प्रयाण होता है, उनको पण्डितमरण प्राप्त नहीं होता। अतः यह बालमरण है। **क्रोध, लोभ या मोह और अज्ञान के वश जो आत्महत्याएँ की जाती हैं, वे सब बालमरण हैं।**

अन्तिम क्षण तक भौतिक कामनाओं की आकुलता होने से ये अकाममरण करते हैं। अतः पण्डितमरण के अधिकारी नहीं होते।

संयमशील व्रती गृहस्थ या महाव्रतधारी साधु-साध्वी जो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के पूर्ण त्यागी और जितेन्द्रिय हैं, आरम्भ, परिग्रह और विषय-कषाय से मन को मोड़कर जिन्होंने परमात्मा के चरणों में चित्त लगा दिया एवं ज्ञान के प्रकाश में जड़-चेतन का भेद समझकर तन, धन, परिजन से ममता हटाली है, वे ही पण्डितमरण के अधिकारी होते हैं। पण्डितमरण में केवल विशुद्ध हेतु और प्रसन्नता के साथ देहत्याग किया जाता है, अतः इसे सकाममरण भी कहते हैं। सभी साधु और श्रावक पण्डितमरण को प्राप्त नहीं करते, किन्तु पण्डितमरण के अधिकारी कुछ विशिष्ट पुरुष ही होते हैं। जैसा कि कहा भी है-

न इमं सव्वेसु भिक्खुसु, न इमं सव्वेसु अगारिसु।
नाणा सीला अगारत्था, विसम-सीला य भिक्खुणो।।

-उत्तराध्ययनसूत्र

अर्थात् यह मरण सभी भिक्षुओं में नहीं होता, न सब गृहस्थों को होता है। कारण कि विभिन्न शील स्वभाव के गृहस्थ होते हैं और भिक्षुओं के भी संयम-स्थान समान नहीं होते।

देखिये, हजार वर्ष का संयमपालन करके भी कुंडरीक ने चन्द दिनों की भोग-भावना में मरण बिगाड़ लिया, परिणामस्वरूप उसको नरक में जाना पड़ा और पुंडरीक ने जीवन का लम्बा समय भोग एवं राग में बिताकर भी अन्तिम दिनों में पवित्र साधना से जीवन सुधार लिया और पण्डितमरण से मरकर सुगति प्राप्त की। यह पण्डितमरण की ही महिमा है। इस प्रसंग से उन दोनों की दृष्टि के भेद का बोध होता है तथा उसकी परिणति जीवन के अन्तिम समय में किस प्रकार हुई- इसका भी ज्ञान होता है।

ज्ञानी कहते हैं-''यदि तुम दुःख से ऊब गए हो, सहने की शक्ति खो चुके हो और मरना चाहते हो तो चिन्ता-शोक में देह को गलाकर मरने की अपेक्षा तप-संयम में देह को विवेकपूर्वक गलाओ और ध्यानाग्नि में दुःख को जलाकर हँसते-हँसते मरो, रोते हुए क्यों मरते हो ?''

पण्डितमरण की विधि

जब समझ लो कि अब शरीर अधिक समय तक टिकने वाला नहीं है अथवा आत्म धर्म-रक्षा के लिये

प्राणों का त्याग करना है, तब सोचना चाहिए कि अब मुझे मन से वैर-विरोध भुलाकर अन्तरात्मा को स्वच्छ बना लेना चाहिये। फिर तन, मन, धन, परिजनादि बाह्य वस्तुओं से मन मोड़ कर, आत्मस्वरूप में वृत्ति जमा कर, सदा के लिये अकरणीय पापकर्म और चतुर्विध आहार का त्याग कर लेना चाहिये।

अर्हन्त सिद्ध की साक्षी से यह निश्चय कर लो कि संसार के दृश्य पदार्थ सब 'पर' और नाशवान हैं। उनको अपना समझ कर ही चिरकाल से मैं भटक रहा हूँ। यह मेरा अज्ञान है। वास्तव में तन एवं धन की हानि से मेरी कोई हानि नहीं होती। मैं सदा शुद्ध, बुद्ध एवं समरस हूँ। आग में जलना, पानी में गलना और रोग से सड़ना मेरा स्वभाव नहीं हूँ। सड़ना, गलना आदि देह के धर्म हैं, अतः इस परमप्रिय देह का भी आज से स्नेह छोड़ता हूँ। मेरा न किसी पर राग है, न किसी पर द्वेष।

इसी प्रकार के मरण से अंबड़ सन्यासी के 700 शिष्यों ने भी सुगति प्राप्त की थी। कंपिलपुर से पुरिमताल की ओर जाते समय जब उनके पास का पानी समाप्त हो गया और तृषा के मारे होठ-कंठ सूखने लगे, तब उन्होंने उस दुःखद स्थिति में निम्न विधि से पण्डितमरण स्वीकार किया था।

पहले गंगा के किनारे बालू को देखा, साफ किया और पूर्वाभिमुख पर्यंकासन से बैठ कर दोनों हाथ जोड़े हुए इस प्रकार बोले-''नमस्कार हो सिद्धि प्राप्त जिनवर को और नमस्कार हो सिद्धगति पाने वाले श्रमण भगवान महावीर को, फिर नमस्कार हो हमारे धर्माचार्य, धर्मगुरु अम्बड़ परिव्राजक को। हमने पहले धर्मगुरु अम्बड़ के पास स्थूल हिंसा, झूठ, अदत्त, सम्पूर्ण मैथुन और परिग्रह का त्याग किया है। अब श्रमण भगवान महावीर के पास आजीवन सब प्रकार के हिंसा, झूठ, अदत्त, कुशील और परिग्रह का त्याग करते हैं। हम सर्वथा क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद अरति-रति, मायामृषा और मिथ्यादर्शनशल्यरूप अकरणीय पापकर्मों का आजीवन त्याग करते हैं और यह शरीर भी जो आज तक इष्ट, कांत एवं अत्यन्त प्रेमपात्र रहा, जिसको सदा भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, दंश-मच्छर, चोर, व्याल और रोग-शोक से बचाते रहे, उस प्रिय तन की भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ हम ममता छोड़ते हैं। अब कुछ भी हो, इस ओर ध्यान नहीं देंगे।'' यह पण्डितमरण ग्रहण करने की विधि है।

इस प्रकार वे संलेखनापूर्वक काल की अपेक्षा नहीं करते हुए समाधिभाव में मरण पाकर ब्रह्मलोक के अधिकारी बने। उन्होंने अपना मरण सुधार लिया।

आत्महत्या और समाधिमरण

बहुत से लोग यह समझते हैं कि संथारा या भत्तपच्चक्खाण से मरना, यह आत्महत्या है। उनको समझना चाहिये कि आत्महत्या और समाधिमरण में बड़ा अन्तर है। आत्महत्या में निष्कारण शोक या मोहादिवश शरीर नष्ट किया जाता है। उसमें चिन्ता-शोक की आकुलता या मोह की विकलता होती है, जबकि समाधिमरण में भय, शोक को भूलकर प्रसन्न मन से सबको मैत्रीभाव से देखते हुए निर्मोह भाव में देह त्याग किया जाता है। आत्महत्या में देह का दुरुपयोग है, जबकि समाधिमरण सभी प्रकार के वेगों को शान्त कर स्वस्थ मन से आयुकाल की निकट अन्त में समाप्ति समझ कर किया जाता है।

आत्महत्या किसी कामना को लेकर होती है। उसमें क्रोध, लोभ, शोक या मोह कारण होते हैं, जबकि समाधिमरण निष्काम होता है। इसमें सभी प्रकार के विकारों को नष्ट कर केवल आत्मशुद्धि का ही लक्ष्य होता है।

समाधिमरण में ये पाँच दूषण माने गये हैं- 1. इस लोक में तन, धन वैभव आदि सुखों की इच्छा करना, 2. इन्द्रादि पद या स्वर्गीय सुख की आशा करना, 3. अधिक जीने की इच्छा करना, 4. कष्ट से घबरा कर जल्द मरने

की इच्छा करना, 5. कामभोग-इन्द्रिय-सुखों की वांछा करना।

समाधिमरण में वहाँ कोई कामना नहीं रहती, वहाँ शरीर को अक्षम समझकर या शील, धर्मादि की रक्षा के लिये अनिवार्य समझकर पवित्र हेतु से आत्महित के लिये शरीर त्यागा जाता है। अतः इसे किसी तरह आत्महत्या नहीं कहा जा सकता है। यह तो समाधिमरण या पण्डितमरण है।

मरण-महिमा

मनुष्य चाहे जैसे भी उच्च कुल, जाति या योनि में उत्पन्न हुआ हो, यदि जीवन का संध्यामरण अंधकारपूर्ण है तो उसका सारा परिश्रम और साधन-संकलन व्यर्थ है। उसका जन्म दुःख-वृद्धि के लिये है। वास्तव में जीवन शिक्षाकाल है और मरण परीक्षाकाल। जीवन कार्यकाल है और मरण विश्रांतिकाल। जैन महर्षियों ने कहा है कि- **जिसका मरण सुधरा उसका जीवन सुधरा समझो और मरण बिगड़ा तो जीवन बिगड़ा समझो, क्योंकि मरण की संध्या पार करके ही प्राणी जीवन के नवप्रभात की ओर जाता है।** शास्त्र में भी कहा है-

अन्तोमुहुत्तम्मि गए, अन्तोमुहुत्तम्मि सेसए चेव।
लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छन्ति परलोयं।।

-उत्तराध्ययन सूत्र, 34.60

जिस लेश्या में जीव काल करता है, अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर जीव परलोक में भी उसी लेश्यास्थान में जाकर उत्पन्न होता है। अतः आत्महितैषियों के लिये मरण-सुधार की ओर लक्ष्य देना अत्यावश्यक है। शास्त्र कहते हैं कि तनधारी प्राणिमात्र को मरना तो है ही, चाहे धैर्यपूर्वक कष्टों की शान्ति से सह कर मरे या कायर की तरह दीन होकर मरे। तन, धन एवं परिवार के लिये अकुलाते हुए मरे या सब से ममता हटाकर निराकुल भाव से मरे। सत्यशील की आराधना करते हुए मरे अथवा शीलरहित अव्रत दशा में मरे। दोनों दशाओं में मरना तो अवश्य है। तब कायर की तरह बिलखते मरने की अपेक्षा संयमशील होकर धैर्य से हँसते हुए मरना ही अच्छा है। कहा भी है-

धीरेणं वि मरियव्वं, काउरिसेण वि अवस्सं मरियव्वं।
दुण्हं पि हु मरियव्वे, वरं खु धीरत्तणे मरिउं।।
सीलेण वि मरियव्वं निस्सीलेण वि अवस्सं मरियव्वं।
दुण्हं पि हु मरियव्वे, वरं खु सीलत्तणे मरिउं।।

-आतुर प्रत्याख्यान

किसी उर्दू कवि ने भी कहा है-

हँस के दुनिया में मरा, कोई कोई रोके मरा।
जिन्दगी पाई मगर उसने, जो कुछ हो के मरा।।

विद्वानों को ऐसे ही मरण से मरना चाहिये। इस प्रकार मरने वाले मर के भी अमरता के भागी होते हैं।

मरण के समय सजगता- विवेकी पुरुष जीवन की अन्तिम घड़ियों में पूरी सतर्कता रखते हैं, क्योंकि उस समय की जरासी गलती बने-बनाये काम को बिगाड़ देती है। अतः ज्योंही उन्हें जीवन-यात्रा में लम्बे समय तक शरीर टिकने वाला नहीं है ऐसा प्रतिभासित होता है, त्योंही बिना विलम्ब वे मरण को सुमरण बनाने के लिये कटिबद्ध हो जाते हैं। तन, धन, परिजन और सम्मान से मन मोड़कर वे एक मात्र आत्मलक्ष्यी हो जाते हैं। तब पराये गुणावगुण देखने की अपेक्षा उनको आत्मदर्शी होकर अपना निरीक्षण करना ही अधिक प्रिय होता है और जीवन की छोटी-मोटी कोई भी चूक हो उसको बिना संकोच के गीतार्थ के पास आलोचना द्वारा प्रकट करना और यथायोग्य प्रायश्चित्त से उसकी

शुद्धि करना उनका प्रधान लक्ष्य होता है। जैसे सुयोग्य वैद्य भी अपनी चिकित्सा दूसरे से कराता है, वैसे ज्ञान-सम्पन्न साधक भी अन्य गीतार्थ के सम्मुख अपनी आलोचना करते और आत्मशुद्धि करते हैं।

संलेखना

मरण की तैयारी के लिये शास्त्रों में पहले संलेखना का विधान है। वह जघन्य 6 मास और उत्कृष्ट 12 वर्ष की होती है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के 36 वें अध्याय में कहा है कि उत्कृष्ट संलेखना 12 वर्ष की, मध्यम 1 वर्ष और जघन्य 6 मास की होती है।

उत्कृष्ट संलेखना में पहले 4 वर्ष दूध आदि विगय का त्याग किया जाता है और दूसरे चार वर्ष में उपवास, बेला आदि विविध तप किये जाते हैं। फिर दो वर्ष एकान्तर तप और पारणक में आयंबिल किया जाता है। ग्यारहवें वर्ष में 6 महीने का सामान्य तप किया जाता है और 6 महीने विशेष तप किया जाता है। इसमें आयंबिल भी परिमित किये जाते हैं। बारहवें वर्ष में उपवास आदि के पारणक में कोटि सहित आयंबिल आदि किये जाते हैं। बीच-बीच में मास और पक्ष के अनशन भी किए जाते हैं। (उत्तराध्ययन 36.252-56)

'व्यवहार सूत्र' के दशम उद्देशक के भाष्य में भी इसका विस्तार से वर्णन मिलता है। वहाँ प्रथम के चार वर्षों में विविध तप का इच्छानुसार कामगुण पारणा और दूसरे चार वर्षों में विगय, त्यागपूर्वक पारणा का उल्लेख है। (व्यवहारभाष्य 412 से 421)

मध्यम और जघन्य संलेखना भी ऐसे मास और पक्ष के विभाग से की जाती है। इस प्रकार संलेखना के अनन्तर गुरु या गीतार्थ परीक्षित ही सामान्य रूप से इस मरण को स्वीकार करते हैं।

संलेखना द्वारा विकारों को क्षीण करने के साथ शरीर को भी क्षीण किया जाता है। जब तक आन्तरिक विकार क्षीण नहीं होते साधक उत्तम मरण को प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिये पहले परीक्षा की जाती थी। मनोनुकूल उत्तम भोजन पाकर भी जब मरणार्थी उसको ग्रहण नहीं करता तब तक उसकी अगृद्धता समझ ली जाती थी। इस पर एक छोटा उदाहरण दिया गया है-

किसी समय एक आचार्य के पास भक्त परीक्षार्थी शिष्य आया और उसने कहा- ''मैं भक्त प्रत्याख्यान करना चाहता हूँ।'' तब आचार्य ने पूछा-'तुमने संलेखना की है या नहीं?' शिष्य को आचार्य की बात से विचार हुआ। उसने सोचा- मेरा शरीर हड्डी का पंजर सा हो चुका है, लोहू-मांस का कहीं नाम भी नहीं, फिर गुरुजी पूछते हैं कि संलेखना की या नहीं? रोष में आकर उसने अपनी अंगुली तोड़ डाली और बोला-'महाराज! देखो, रक्त की एक बूँद भी नहीं है, क्या अब भी संलेखना बाकी है?' गुरुजी ने कहा-'वत्स! यह तो द्रव्य संलेखना का रूप है जो तेरे शरीर से प्रत्यक्ष दिखता है, किन्तु अभी भाव संलेखना करनी है, कषाय के विकारों को सुखाना है। इसीलिये मैंने पूछा था कि संलेखना की या नहीं? जाओ, अभी भाव संलेखना करो। फिर भक्त पच्चक्खाण संथारा प्राप्त होगा।' **(व्यवहारभाष्य, 450)**

इस प्रकार द्रव्य-भाव-संलेखनापूर्वक किया गया मरण ही 'पण्डितमरण' है। मारणान्तिक कष्ट, आघात, या आतंक से निकट भविष्य में ही देह छूटने वाला हो, वैसी स्थिति में द्रव्य संलेखना की आवश्यकता नहीं होती। उसी समय आलोचनापूर्वक आत्मशुद्धि की जाती है और विचार एवं आचार की पूर्ण शुद्धि के साथ सर्वथा पापों के त्याग कर लिये जाते हैं।

संदर्भः-

1. भगवतीसूत्र, शतक 13, उद्देशक 7, सूत्र 496,
2. स्थानांगसूत्र, स्थान 3, सूत्र 222
3. स्थानांगसूत्र 2

-जिनवाणी, श्रद्धाञ्जलि विशेषांक 1991 से साभार

प्रवचनांश

दृढ़ता, निर्भीकता एवं समर्पण की धनी थी शासनप्रभाविकाजी

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा.

पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के द्वारा 8 दिसम्बर 2016 को सोजतरोड में आयोजित गुणानुवाद सभा में फरमाये गए विचारों का श्री जगदीशजी जैन द्वारा संकलित रूप।**-सम्पादक**

आत्मोत्थान की साधना तपस्या-सेवा-स्वाध्याय-आचरण के द्वारा की जाती है। तपे हुए तप का, पाले हुए व्रत-महाव्रत का और पढ़े हुए ज्ञान का सार 'समाधिपूर्वक मरण' है। कोई पुण्यशाली होता है, जिनको ऐसा सुयोग मिलता है। साध्वीप्रमुखाजी पुण्यशाली थी जिनको इसकी प्राप्ति हुई। मैनाजी का जन्म आषाढ़ सुदि 2 संवत् 1990, रविवार, 25 जून 1933 को सायं 7 बजे कोण्डीतोप, चेन्नई में पिता श्री रिडमलजी भण्डारी, माताश्री जतनदेवी के यहाँ हुआ। इनकी बड़ी बहिनें पारसबाई और सायरबाई दोनों बाल विधवा हो गईं। सायरजी सतियाँ जी की सेवा में रहने लगीं। उनमें वैराग्य भाव जाग गया। उनको माता-पिता की ओर से दीक्षा की अनुमति मिल गई। जब मैनाजी को पता चला कि बड़ी बहिन की दीक्षा हो रही है तो इन्होंने भी दीक्षा के लिये आग्रह किया तथा 13 वर्ष की उम्र में ज्ञान सीखना प्रारम्भ कर दिया। आगम, थोकड़े शीघ्र ही सीखने की ललक लग गई। सामायिक, प्रतिक्रमण, बोल आदि अल्पकाल में कण्ठस्थ कर लिये। माघ सुदि 13 संवत् 2003 को सायरजी की भागवती दीक्षा की स्वीकृति माता-पिता की ओर से होने पर मैनाजी ने भी माता-पिता से आग्रह किया कि बड़ी बहिन के साथ मेरी भी दीक्षा हो। माता-पिता सहमत नहीं हुए। उन्होंने समझाया कि वे तो विधवा हैं, तुम्हारी तो हम शादी करने की सोच रहे हैं। इस पर मैनाजी का जवाब था-'क्या आप मुझे विधवा बनने से रोक सकते हैं? यदि वैधव्य का दुःख न मिले, इसकी आप गारण्टी देते हों तो मैं दीक्षा नहीं लूँगी।' माता-पिता उनके सटीक प्रश्न से निरुत्तर हो गये। इस तरह मैनाजी ने तर्क देकर दीक्षित हो रही बड़ी बहिन सायर के साथ घर वालों को मनाकर माघ सुदि 13, संवत् 2003 को 13 वर्ष की अवस्था में गुरुणी श्री बदनकंवरजी म.सा. की नेश्राय में पूज्य गुरुदेव (आचार्य श्री हस्ती) के मुखारविन्द से जैन भगवती दीक्षा ग्रहण कर ली।

वि.संवत् 2004 निमाज चातुर्मास से संवत् 2025 तक गुरुणी प्रवर्तिनी श्री बदनकंवरजी के साथ चातुर्मास कर शास्त्र, संस्कृत, व्याकरण, प्राकृत का विशद अध्ययन किया। टोंक-सवाईमाधोपुर पोरवाल क्षेत्र में पृथक् चातुर्मास कर विद्वत्ता से सबको प्रभावित किया। विरोधियों के बीच धैर्य के साथ चातुर्मास कर विरोधियों को शांत कर, अन्यान्य क्षेत्रों में विचरण कर शासन की प्रभावना की। व्याख्यान के लिये आप सदैव तैयार रहते, चाहे सुनने वाले पाँच हो या पाँच सौ। 83 वर्ष की अवस्था तक भी प्रवचन प्रभावना का रूप देखने को मिला। ग्राम-नगर सभी जगह अप्रमत्तता का आदर्श कायम रखा। किसी भी क्षेत्र, सभा, प्रवृत्ति में कोई प्रमाद/आलस्य नहीं। शिक्षण बोर्ड की थोकड़े-आगम आधारित परीक्षाओं में युवा सतियाँ भले ही प्रमाद कर जातीं, पर आपकी सहभागिता अन्तिम समय तक रही। आचार्यश्री से भी निडरता से जिज्ञासाओं के समाधान के लिये पृच्छा किया करती। संघ की गौरव-गरिमा के लिये आचार्यों को भी विनय भाव के साथ स्पष्ट निवेदन करने में संकोच नहीं रखतीं। नहले पर दहला रखने की कला हस्तगत होने से सामान्य संत-सती उनसे इधर-उधर फिजूल बातें करने का साहस ही नहीं कर पाते थे। वे साहसी प्रकृति की धनी थी। पोरवाल क्षेत्र में विचरण के समय ईसरदा से चौथ का बरवाड़ा के मध्य बनास नदी की पुलिया पार करते समय साथ चल रहे भाई गुलाबचन्द जी नवलखा पटरियों के बीच असावधानी से चलते गिर गये,

पुण्यवानी से पटरी पकड़ में आ गई, उनका शरीर नीचे झूल रहा था। पटरी-स्लीपर के सहारे कहाँ तक लटकते रहते, आखिर हाथ फूलकर नीचे गिरना व मृत्यु के मुख में समाना अवश्य ही संभव लग रहा था। सती मैनाजी ने यह सब रुककर देखा और हिम्मत कर साथ वाली सती को संकेत कर दोनों ने हाथ पकड़कर ऊपर खींच कर करुणाशीलता का परिचय दिया। पाप भीरु ने नवलखा जी को बचा लिया।

एक बार जंगल में उपद्रव की स्थिति में भी साहस का परिचय दिया। अपनी प्रज्ञा से उपद्रवियों को उनकी भूल का अहसास करवाकर शांत करने में वे सफल रहीं। सती चन्द्रकला पर असामयिक घटना का उल्लेख भी प्रासंगिक है। वे आज जो शासन की प्रभावना कर रही हैं इसके पीछे मैनाजी का ही सहयोग है। संवत् 2038 में रायचूर में दीक्षित हुई 21 वर्षीया चन्द्रकलाजी संवत् 2055 का बारणी चातुर्मास मैनाजी की सेवा में कर गवारड़ी विहार कर पधार आई थी कि अचानक सायं काल छत के नीचे का लेवड़ा सतीजी के शरीर पर ऊपर से आ गिरा। चन्द्रकलाजी की रीढ़ की हड्डी क्षत-विक्षत हो गई, वे हिलडुल भी नहीं सकती थीं। उस समय उम्र 38 के लगभग थी। मैनाजी की सेवा से नथमल जी हीरावत समाचार लेकर मेरे पास भकरी आये। सारी स्थिति से अवगत कराते हुए मैनाजी द्वारा प्रेषित भाव कहे कि दोष लगेगा, लग जायेगा, सतीजी का जीवन बचाना है। साहसी प्रकृति वाली ऐसी साध्वीप्रमुखा थी। हिम्मत रखने पर सबकुछ किया जा सकता है।

आज अधिकतर दीक्षित सतियाँ उन्हीं की हैं। अच्छे-अच्छे घरों की बच्चियाँ उनके सम्पर्क में आयी और प्रभावित हुईं। शास्त्र-वाचना, पढ़ना-पढ़ाना, वैराग्य भावना जागृत करने आदि गुण मैनाजी में निहित थे। उनका व्यक्तित्व कृतित्व नेतृत्व अद्वितीय था। अनुशासन की कला बेजोड़ थी। आनन्दऋषिजी व नानालालजी जैसे आचार्यों ने उनके क्षेत्रों में मैनाजी का चातुर्मास होने के समय श्रावकों को खयाल दिलवाया कि इनका (मैनासुन्दरीजी) चातुर्मास है, धर्माराधन का ध्यान रखना। मैनाजी को हर सम्प्रदाय से सौहार्द मिला। वे जहाँ-जहाँ भी विचरे, संघ की महिमा को वर्धापित किया। मैनाजी ने सुदूर प्रान्त- तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्रपदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तर प्रदेश में विचरण कर, राजस्थान के हर क्षेत्र में पधारकर फरसकर जिनशासन की जाहोजलाली की। मैनाजी द्वारा किये गये चातुर्मासों की लम्बी शृंखला विक्रम संवत् में इस प्रकार हैः- 1. निमाज (2004), 2. ब्यावर (2005), 3. पीपाड़ (2006),4. भोपालगढ़ (2007), 5. जोधपुर (2008), 6. पाली (2009), 7. भोपालगढ़ (2010), 8. मदनगंज (2011), 9. जोधपुर (2012), 10. बीकानेर (2013), 11. नागौर (2014), 12. पाली (2015), 13. जयपुर (2016), 14. जयपुर (2017), 15. भोपालगढ़ (2018), 16. सैलाना (2019), 17. जयपुर (2020), 18. भीलवाड़ा (2021), 19. भोपालगढ़ (2022), 20. जयपुर (2023), 21. जयपुर (2024), 22. जोधपुर (2025), 23. भोपालगढ़ (2026), 24. अजमेर (2027), 25. जोधपुर (2028), 26. बिलाड़ा (2029), 27. गुलाबपुरा (2030), 28. भीलवाड़ा (2031), 29. ब्यावर (2032), 30. चौथ का बरवाड़ा (2033), 31. टोंक (2034), 32. भोपालगढ़ (2035), 33. जयपुर (2036), 34. बीजापुर (2037), 35. गजेन्द्रगढ़ (2038), 36. बैंगलोर (2039), 37. कोडबाक्कम (2040), 38. साहूकारपेट (2041), 39. बैंगलोर (2042), 40. रायचूर (2043), 41. बालकेश्वर (2044), 42. जलगांव (2045), 43. जोधपुर (2046), 44. पाली (2047), 45. बजरिया-सवाईमाधोपुर (2048), 46. हिण्डौन (2049), 47. कानपुर (2050), 48. मेड़तासिटी (2051), 49. जोधपुर (2052), 50. कोटा (2053), 51. उज्जैन (2054), 52. बारणी (2055), 53. जयपुर (2056), 54. जवाहर नगर-जयपुर (2057), 55. जोधपुर (2058), 56. नेहरूपार्क-जोधपुर (2059), 57. पावटा-जोधपुर (2060), 58. नेहरूपार्क-जोधपुर (2061), 59. लक्ष्मीनगर-जोधपुर (2062), 60. जोधपुर शहर (2063), 61. सरस्वती नगर (2064), 62. पावटा-जोधपुर (2065), 63. जोधपुर शहर (2066), 64. जोधपुर शहर (2067), 65.

पावटा-जोधपुर (2068), 66. जोधपुर शहर (2069), 67. शक्तिनगर-जोधपुर (2070), 68. शक्तिनगर-जोधपुर (2071), 69. पावटा-जोधपुर (2072), 70. पावटा जोधपुर (2073)।

70 वर्षीय दीक्षा पर्याय वाली साध्वी मैनासुन्दरीजी ने अपनी गुरुणी जी बदनकंवर के साथ 24 चौमासे, सती सायरकंवरजी के साथ 7 चौमासे एवं स्वतंत्र संघाड़ा प्रमुख के रूप में 39 चौमासे किये। भगवंत (आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा.) की सेवा में 8 चातुर्मास करने का सौभाग्य मिला। साध्वीप्रमुखाजी का अंतरंग भावना से सम्वत् 2068 का चौमासा पावटा में मैंने भी किया। अभी 2073 का चातुर्मास समाधि के साथ पावटा में हुआ। 19 नवम्बर को समाचार मिले कि साध्वीप्रमुखाजी संथारे की याचना कर रहे हैं। इस पर चिन्तन कर मार्गशीर्ष बदि 7 रविवार, 20 नवम्बर को सतीमण्डल द्वारा सागारी संथारा करवाया गया एवं अनुमति पाकर 21 नवम्बर को जीवन पर्यन्त तिविहार संथारे के प्रत्याख्यान करवाये गए। जागृत अवस्था में प्रमोदभाव से संथारा ग्रहण किया। शुगर (मधुमेह) की उच्चता में भी सहवर्ती सतियों की स्वीकृति मिली।

संथारे में चमत्कार होना सामान्य बात है, पर मैनाजी ने दृढ़ता, साहस, समर्पणता का परिचय दिया। जब भी उनसे पूछा जाता, आपकी क्या भावना है, बस यही उत्तर मिलता- 'चौविहार'। आखिर मार्गशीर्ष सुदि 7 मंगलवार 06 दिसम्बर 2016 को चौविहार के प्रत्याख्यान करवा दिये। हलुकर्मी मैनाजी का कुछ समय बाद ही संथारा सीझ गया। जाते-जाते भी शासन की प्रभावना के साथ संघ की दीप्ति एवं संघ का गौरव बढ़ाया। सहूलियत की चाहना वालों को संथारा तो दूर वे संयम की निर्मल साधना सम्यक् रूप से नहीं कर पाते। संथारा की भावना वालों को साथ और साज देकर आगे बढ़ाने में सहयोग करने पर संलेखना-संथारा की शृंखला में इससे नया अध्याय जुड़ा है। पूर्ण सजग अवस्था में संथारा अंगीकार कर मृत्यु का वरण करने वाली मैनाजी महाराज का 16 दिवसीय संलेखना तप उनकी स्मृति कराता रहेगा। साध्वीप्रमुखाजी के महाप्रयाण के बाद **व्याख्यात्री महासती तेजकंवरजी म.सा.** को इस पद पर प्रतिष्ठित किया जाता है, अब वे **साध्वीप्रमुखा विदुषी महासती तेजकंवरजी म.सा.** के नाम से सम्बोधित की जायेंगी।

यशःशरीरेण विराजते

उपाध्याय श्री रमेशमुनि शास्त्री

(उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी म. के शिष्य)

श्रीमैनासुन्दरी नाम्ना, वस्तुतः श्रमणी-मणिः।
साधिका सरला सौम्या, प्रसिद्धिं या गता सदा।।1।।

युक्ता निर्लिप्त-भावेन, मुक्ता पाप-मलेन या।
नित्यं यशःशरीरेण, या दिव्येन विराजते।।2।।

हितं मितं मनोहारि, सत्य-पूर्णं सुभाषिणी।
नित्यं विना विरामेण, धर्म-ध्वजं बिभर्ति या।।3।।

रतित्वं सद्गुणे नूनं, पूर्णमासीत् निरन्तरम्।
या सदाऽऽदर्श-धर्मेण, भव्य-भावेन मण्डिता।।4।।

गुणानां ग्राहिणी दृष्टिः, यदीया वस्तुतः सदा।
पराङ्मुखत्वमासीच्च, दुर्गुणे पङ्क-सन्निभे।।5।।

नूनं पूर्णेन्दु-संकाशं, चरित्रं धवलं सदा।
सन्ति धन्याः नराःनार्यः यस्याः सम्प्राप्य दर्शनम्।।6।।

श्रद्धार्पण

संथारा-गीत

मधुरव्याख्यानी श्रद्धेय श्री गौतममुनिजी म.सा.

साध्वीप्रमुखा शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. के संथारे के प्रसंग पर मधुरव्याख्यानी श्रद्धेय श्री गौतममुनिजी म.सा. द्वारा रचित काव्यांजलि का संकलन श्री धर्मचन्द जैन, रजिस्ट्रार, आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर द्वारा किया गया।**-सम्पादक**

(तर्जः- जिनशासन कहता आओ, भगवान बना दूँगा, लाओ तुम्हारे लाल को, इंसान बना दूँगा।)

आतम के हित में तुमने, स्वीकारा संथारा
पल-पल में उज्ज्वल रखना, परिणामों की धारा।।
अरिहंत शरण है उत्तम, सिद्धों को नमन करो,
आचार्य और उवज्झाया, निर्ग्रन्थ गुरु सुमरो,
परमेष्ठी पाँच हैं पावन, अब गूँजे नवकारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।1।।

महावीर के इस शासन में, रत्नों को पाया है,
'हीरा' और 'मान' गुरु में, हस्ती की छाया है,
है पुण्य अनन्त भवों का, संयम में संथारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।2।।

दुर्लभ दस बोल मिले हैं, कोई पुण्यशील पाते,
अब तो सिद्धि पद बाकी, दस बोल ये बतलाते,
साकार करो साधकता, अवसर आया प्यारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।3।।

वीरों का मार्ग लिया है, बढ़ना है अब आगे,
हो भाव विशुद्धि गहरी, अंतर आतम जागे,
है खेल सभी भावों का, लो उसका आधारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।4।।

यह तन छूटे तो छूटे, मैं तो हूँ अविनाशी,
मैं सिद्ध स्वरूपी चेतन, सिद्धि का हूँ वासी,
पर्यायों से मैं पर हूँ, मैं निश्चल ध्रुव तारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।5।।

यह तन तो अशुचिमय है, रोगों का घर कहते,
क्षणभंगुर नश्वर तन से, गन्दे नाले बहते,
इस तन की ममता से ही, ये जनम मरण धारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।6।।

जहाँ मिलन बिछुड़ना होता, संसार उसे कहते,
जहाँ मैं और मेरापन है, दुःख द्वन्द्व वहाँ रहते,
मत जनम-मरण अब करना,संसार है दुखियारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।7।।

मृत्यु से क्या घबराना, मरता है केवल तन,
तुम अजर अमर अक्षय हो, तुम अविनाशी चेतन,
परभावों से मत जुड़ना, ये मेल है दुःखकारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।8।।

मृत्यु से वो ही डरते, जो आसक्ति रखते,
जो देह राग में डूबे, रिश्तों में ही रमते।
मुक्ति के हम हैं राही, नहीं बंधन है प्यारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।9।।

उस उत्तम घर को पाये, जहाँ जनम मरण रुकते,
जहाँ रोग शोक नहीं होते,दुःख द्वन्द्व सभी मिटते ।
सिद्धि पद अपना घर है, अब छूटे संसारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।10।।

ये जीव अनादि भटका, इन कर्मो के वश में,
नहीं सावधान था बंध में, रहा भोगों के रस में।
हो विजय आज कर्मों पर, फिर गूंजे जयकारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।11।।

सिद्धों से अब मिलने की, ये आई है बारी,
निःशल्य बनो आतम से, करलो ये तैयारी,
ये मौका है मत चूको, दो पाप को धिक्कारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।12।।
चाहे सुख हो या दुःख हो, बस द्रष्टा भाव रहे,
करतूत सभी है मन की, मन के वश में न बहे,
सुख-दुःख तो आते जाते, चेतन सबसे न्यारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।13।।
कितने-कितने हम भटके, दुःख झेले हैं कितने,
नहीं कोई इसकी गिनती, बस पाप किये हमने,
पुरुषार्थ करो अब ऐसा, नही जन्म हो दोबारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।14।।
इस उदय भाव में चेतन, नहीं रख पाया समता,
कभी पुण्य उदय में रागी, दुःख में आहें भरता।
ज्ञाता-द्रष्टा बन जीना, नहीं कर्मो का भारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।15।।
परिचित और परिजन जितने, ये राग बढ़ाते हैं,
संयम को दूषित करते, बढ़ने नही देते हैं,
अब मोह भाव को जीतो, पावो सिद्धि द्वारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।16।।
ये सम्प्रदाय और सतियाँ, सबके सब उपकारी,
नहीं राग हो इनसे किंचित्, ये राग है बीमारी,
संयोग मुक्त बन विचरो, निसंग भाव प्यारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।17।।
नहीं टूटे आत्म रमणता, वो आत्म समाधि हो,
निर्द्वन्द्व रहे अब निज में, चाहे तन में व्याधि हो,
पुद्गल सुख तो हैं झूठे, अब लगे सभी खारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।18।।
तुम्हें बनना गौतम जम्बू, चन्दनबाला बनना,
आतम बल भरलो इतना, नही और कहीं रुकना,
गौतम से प्रभु फरमाते, हो श्रद्धा बल प्यारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।19।।
जो छूटे उससे पहले, छोड़े वह है ज्ञानी,
मिटने वाले पर मिटना, ये तो है नादानी।
जिसने सत्यम् को जाना, उसने आतम तारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।20।।
जयवन्त सदा जिनशासन, हुए साधक वीर बड़े,
प्राणों की नहीं परवाह थी, कर्मों से जूझ पड़े।
कर सफल मनोरथ अपना, फिर मौत को ललकारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।21।।
ये आत्म समाधि उत्तम, दुर्लभता से मिलती,
हर साधक नहीं पा सकता, मन की मन रह जाती,
तुम पुण्यशाली हो आतम, हो सफल यह संथारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।22।।
इक दिन तो सबको मरना, नहीं जोर वहाँ चलता,
सुरपति हो या नरपति, नहीं अमर कोई रहता।
मत देह भाव में रीझो, तोड़ो तन की कारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।23।।
अणगार अनाथी कहते, नहीं कोई शरण दाता,
तन-धन-परिजन सब परखे, नहीं रक्षक या त्राता।
मृत्यु या रोग की बेला, नहीं कोई रखवारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।24।।
बिन धन के निर्धन दुखिया, और तृष्णावश धनिया,
नहीं कोई सुखी यहाँ मिलता, जग सारा है दुखिया।
यहाँ कपिल केवली कहते, तृष्णा का नहीं पारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।25।।
नहीं कोई यहाँ पर अपना, क्यों पर की आश करें,
एकत्व भाव में जीना, स्व का विश्वास करें।
नमिराज को याद करो तुम, आतम ही सुखकारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।26।।

अठारह पापों की आलोचना

यह क्षण आतम शोधन का, कोई दोष न रह पाए,
गुरु साक्षी से आलोचन, अब दोष को विसराए,
आराधक बनना तुमको, हो भव से निस्तारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।27।।
बिन आराधक चेतन के, भव बिगड़-बिगड़ जाते,

पापों के बोझ तले वो, फिर संभल नहीं पाते।
आराधकता को साधो, चाहे फूल हो अंगारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।28।।

भव-भव में जीव सताए, स्वार्थ वश कष्ट दिये,
उनको अब आज खमालो, मैत्री का भाव लिये,
मै सबका हूँ सब मेरे, हो करुणा की धारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।29।।

कभी दोष असत्य लगा हो, अपने सम्भाषण में,
बिन पूछे वस्तु लेकर, जो पाप किया प्रण में,
आलोचन करलो इनका, आतम के हितकारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।30।।

अब्रह्म से दूषित आत्मा, इसकी भी हो शुद्धि,
ये पाप परिग्रह दलदल, इनमें नहीं हो गृद्धि,
पापो से हलके हो लो, कर प्रतिक्रमण सारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।31।।

क्रोधी बन क्रोध किया था, और मान किया गहरा,
छल कपट किये स्वार्थ से, लोभी का था चेहरा,
अब वीतरागता पाने, इनसे हो छुटकारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।32।।

ये राग द्वेष की ग्रन्थि, देखो न रह पाये,
हो सजग आज अन्तर से, इस पाप को विसराए,
जड़-चेतन भेद समझलो, ये भेद ज्ञान प्यारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।33।।

अपनी ही बात मनाने, जो कलह किया जन में,
झूठा आरोप लगाया, गहरी ईर्ष्या मन में,
अब मुक्त बनों पापों से, आतमहित उपचारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।34।।

चुगली निन्दा के रस में, हर जनम-जनम खोए,
रति-अरति से जुड़कर, ये कर्म बीज बोए,
माया-मृषा को छोड़ो, हो दोष का परिहारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।35।।

भव-भव में मिथ्या भ्रम से, जीवन को व्यर्थ किया,
नश्वर को अपना माना, अपने को गौण किया,
गौतम से प्रभु कहते हैं, हो समकित उजियारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।36।।

जो-जो पाप किये हो, निन्दामि गरिहामि,
अरिहन्तों की साक्षी से, मिच्छामि मिच्छामि,
आतम शुद्धि हित होवे, पापों से छुटकारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।37।।

जिनवाणी आत्महितैषी, सम्बोधि धन देती,
भ्रान्ति भ्रम दूर भगाती, दृढ़ श्रद्धा बल भरती।
न्यूनाधिक बोला-चाला, हो खेद का उच्चारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।38।।

अनुशासन पाठ पढ़ाती, सामाचारी शिक्षा,
शुद्ध मन से नहीं पाला तो, दूषित अपनी दीक्षा।
है पश्चात्ताप यदि तो, उसका है भवपारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।39।।

ये समिति गुप्ति माता, संयम रक्षा करती,
निर्दोष रखे हर चर्या, वैराग्य भाव भरती,
अवहेलना हुई जो माँ की, दो मिच्छामि नारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।40।।

ये पंच महाव्रत उत्तम, गुरु हस्ती से पाये,
जिनके पालन से साधक, आराधक बन जाए,
दृढ़ता से जो नहीं पाले, लो प्रायश्चित्त सारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।41।।

दस यति धर्म हैं अपने, इनमें जीना मरना,
साधक की यही निशानी, हर चर्या में यतना।
यदि भूल हुई पालन में, तो करलो स्वीकारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।42।।

आनन्द से चर्चा करते, गौतम जब चूक गये,
तत्काल खमाने आये, नहीं किंचित् दोष रहे,
आदर्श उदाहरण सुनकर, जागे वो संस्कारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।43।।

जिनशासन ऊँचा पाया, गुरु भी सच्चे पाये,
घेरे न प्रमाद कभी भी, वो सजग भाव लाये,

आराधकता के क्षण हैं, सुनलो हे अणगारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।44।।
संकल्प किया है हमने, सिद्धि पद पायेंगे,
नहीं कदम रुकेंगे बढ़ते, पुरुषार्थ जगायेंगे।
गुरुवर का साथ मिला है, पायेंगे उजियारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।45।।
मंजिल पर एक नज़र है, नहीं और कोई इच्छा,
अरिहन्त बनेंगे धुन है, ये ज्ञान मिला सच्चा।
गुरुदेव कृपा अब रखना, अर्पण जीवन सारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।46।।
मुक्ति के हम हैं प्यासे, मुक्ति की लगन लगी,
हर मुश्किल पार करेंगे, अन्तर में उमंग जगी।
कष्टों में नहीं झुकेंगे, अन्तर में स्वीकारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।47।।
रिश्तों की इस दुनिया में, नहीं उलझेंगे फिर से,
अपना है कौन पराया, समझा है गुरुवर से।
अब तो रिश्ता सिद्धों से, उनका ही सत्कारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।48।।

(नोट: संथारे के अतिरिक्त अन्य दिनों में साधक जब कभी भी पक्खी आदि में आत्म-शुद्धि हित आलोचना करें तो प्रारम्भ की टेर(मुखड़ा) को इस तरह से बदल कर बोलें-

आतम को शुद्ध बनालो, कर आलोचन सारा।
पल-पल में उज्ज्वल रखना, परिणामों की धारा।।)

महासती जी के अन्तर-स्वर

आज्ञा के अनुपालन में, नहीं समझा प्रभु तुमको,
हे भगवन्! आप दयालु, दो क्षमादान मुझको,
आज्ञा ही धर्म हमारा, आतम का उपकारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।A।।
सहवर्ती संत-सती से, अपराध खमाती हूँ,
जो दिल-दुःख पाया मुझसे, मैं माफी चाहती हूँ,
संयम सहयोगी तुम हो, नहीं भूलूँ उपकारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।B।।
सुनलो अब सारी सतियां, ये पंछी अब उड़ता,
पीछे सब प्रेम से रहना, गुरु आज्ञा में चलना,
आचार-धर्म शुद्ध पालो, हो शासन जयकारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।C।।
छोटी-छोटी बातों पर, नहीं कभी उलझना तुम,
क्या साथ में लेकर आए, क्या ले जायेंगे हम।
दो मीठे बोल रहेंगे, हो प्रेम का विस्तारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।D।।
जिनशासन महिमा बढ़ती, इस प्रेम के ही बल पर,
पहचान यही साधक की, जो प्रेम रखे हितकर,
तुम प्रेम से हिल-मिल रहना, ये प्रेम भाव प्यारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।E।।
मैं ना मैं ना की धुन में, हाँ उत्तम फल पाओ,
इस विनय की महिमा गहरी, आगम के स्वर गाओ।
लघुता से ही है मुक्ति, नहीं और कोई चारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।F।।
व्यवहार में शुद्धि रखना, हर चर्या में यतना,
निन्दा हो जन में वैसा, नहीं काम कोई करना।
बाहर व्यवहार ही दिखता, शुद्ध पालो आचारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।G।।
निन्दा न किसी की करना, और नहीं कभी सुनना,
खुद में हैं अवगुण कितने, निज दोष दूर करना,
गुण-दर्शन, गुण-वर्णन, गुण-ग्रहण करो प्यारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।H।।
आहार वस्त्र और पात्रम्, हो पूरण शुद्ध गवेषण,
नहीं दोष हो इनमें किंचित्, अरिहन्त का निर्देशन,
जिनवाणी पाकर मेटो, अज्ञान का अंधियारा।।
पल-पल में उज्ज्वल रखना.....।।I।।

-रजिस्ट्रार-अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर(राज.)

संलेखना-संथारा : मिटती हुई काया से राग-द्वेष को मिटाने की अन्तिम साधना

तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनिजी म.सा.

श्रद्धेय श्री प्रमोदमुनिजी म.सा. द्वारा महावीर भवन, अलवर में 12 एवं 13 अगस्त, 2015 को फरमाए इस प्रवचन का संकलन-सम्पादन श्री ओमप्रकाशजी गुप्ता, राजस्थान टाइम्स, अलवर द्वारा किया गया है।-**सम्पादक**

इस संसार में साधना के भिन्न-भिन्न स्वरूप एवं पथ हैं, लेकिन जैनदर्शन में सल्लेखना-संथारा आत्मतत्त्व से स्वयं को जोड़ने की ऐसी अंतिम महान् साधना है जो समूची पृथ्वी पर अद्वितीय व अलौकिक है। संलेखना-संथारा कोई हंसी-मजाक का खेल नहीं है वरन् इसका अनुकरण कोई-कोई भव्य आत्मा द्वारा पूर्ण होश-हवास में, भीतर के समर्पण, अपनी तमाम सांसारिक इच्छाओं एवं राग-द्वेष को मिटाकर, छह काय के सभी जीवों से क्षमा-याचना कर पूर्ण समता व एकत्व की भावनाओं से की जाती है। **संलेखना-संथारा अपनी काया को मिटाने की साधना नहीं है, वरन् मिटती हुई काया से मोह-द्वेष को पूर्णतया निकालने की अन्तिम साधना है।** जो गांठें मन के गलत विचारों से बंधी हुई हैं, उन्हें हमेशा के लिए खोलकर प्रायश्चित्त भावों से आत्मा का शुद्धीकरण करना आवश्यक है। यह उस अनन्त आत्मा से जुड़ने का अन्तिम प्रयास है जो कभी मरती नहीं है। उसके लिए साधक पूर्व में साधना के अनेक तरीके अपना चुका होता है और तभी अंत में संथारा की भावना स्वयं के भीतर से उपजती है। चूंकि साधक को जब यह अनुभव हो पाता है कि अब काया साथ नहीं दे पाएगी, तब अन्तिम साधना बतौर संलेखना-संथारा को अपनाने के भाव उपजते हैं। यह किसी के दबाव-प्रलोभन अथवा बहकावे में नहीं होती।

संलेखना-संथारा का मतलब है- जागृतिपूर्वक मोह-ममता, विषय-विकार, इच्छा-कामना से पूर्ण छुटकारा और मिटती हुई काया में आत्म-दर्शन। सारे कषायों क्रोध-मान-माया-लोभ को जीतकर परिवारजन एवं शरीर से भी नाता तोड़कर आत्मा के करीब होना संथारा है। चूंकि सत्य यही है कि शरीर व आत्मा दोनों भिन्न हैं। शरीर विनाशी है जिसे एक दिन मिटना ही पड़ता है। संसार में आज तक कोई भी ऐसा नहीं हुआ जिसका शरीर मरण को प्राप्त नहीं हो पाया, लेकिन आत्मा अविनाशी है। जब तक शरीर से आत्मा का सम्बन्ध है, तब तक ही उसका बोध किया जा सकता है। एक दिन शरीर तो यहीं छूट जाता है और आत्मा नया जन्म ग्रहण कर लेती है अथवा मुक्त हो जाती है। संलेखना-संथारा में मृत्यु की लेशमात्र भी इच्छा नहीं की जाती वरन् मिले हुए का सदुपयोग करते हुए अन्तिम वक्त में अपनी शेष बची सांसों को उत्तम व सर्वोत्कृष्ट रूप में सफल बनाया जाता है। किसी से भी कोई आसक्ति नहीं, पूर्णतया निर्विकार होकर एकत्व भावना को बरकरार रखने की दुर्लभतम साधना की जाती है। शब्द व विचारों से शून्य होकर जब साधक आत्म-समाधि की साधना में पूर्ण विलीन होता है, तो वही संथारा है। भीतरी आँखों से पूर्ण जागृति के साथ सर्व शक्तिमान आत्मा के दर्शन करते हुए उसी में लीन होना संथारा है। जैन दर्शन की यह मान्यता है कि ऐसा निष्काम कर्म योगी एक दिन मुक्ति पथ पाने का अधिकारी बनता है और यह सत्य है, क्योंकि तमाम वीतरागी आत्माओं ने इसी पथ से मुक्ति पाई है।

संलेखना-संथारा में कोई इच्छा शेष नहीं रहती। सिर्फ निवृत्ति मार्ग ही इसका ध्येय है और अन्तिम घड़ी में भी साधक अपने एक-एक दोष व भूलों को देखता है कि कोई भीतर में वैर-विरोध की गांठ या विकार

की ग्रंथि तो नहीं रह गई। यह बेहोशी की नहीं पूर्ण होश की साधना है। आत्म-शोधन का पथ है, क्योंकि आत्मा से अपने किए हुए पाप कभी छिपे हुए रह ही नहीं सकते। **मिटती काया से बचे दोषों को निकालने का यह अन्तिम पुरुषार्थ है।** जब देह से कोई ममत्व ही नहीं रह जाता, तब जीव उच्च भावों में रमण करता है, भीतर की अशुद्धि दूर करने के लिए तत्पर रहता है।

संलेखना-संथारा में मरने की इच्छा करना भी दोष है, अतः उसे आत्महत्या के समान कहना मिथ्या है। आत्महत्या प्रायः भावावेश में तत्काल की जाने वाली प्रवृत्ति है, जबकि संलेखना-संथारा का विवेकपूर्वक संकल्प लिया जाता है। आत्महत्या करने वाला पंखे पर फांसी का फंदा लगाकर, जहर खाकर, कुएँ में कूदकर, आग लगाकर , रेल के आगे छलांग या पेड़ पर लटक कर जीवन का अंत करता है, जबकि संलेखना-संथारा में प्रत्येक वस्तु-पदार्थ ही नहीं वरन् अपने शरीर तक के उपयोग का त्याग किया जाता है। आत्महत्या अक्सर युवा अवस्था में होती है, जबकि **संथारा जीवन की अन्तिम घड़ी की जागृतिपूर्वक साधना है। इसमें न काया को मिटाने और न ही काया के मिटने के भाव होते हैं, फिर उसे इच्छा-मृत्यु कहना भी अवांछनीय है।** अपने संयम रक्षण के अलावा कोई दूसरी भावना सल्लेखना-संथारा में नहीं होती। जैनदर्शन में आत्महत्या व आत्मघाती को तो घोर महापापी कहा गया है। 16 प्रकार की आत्महत्याओं का शास्त्रों में वर्णन आता है, जिनमें अपने शील व संयम की रक्षा को छोड़कर शेष मामले महापाप की श्रेणी में कहे गए हैं। **अपना जीव आर्त्तध्यान-रौद्रध्यान करता हुआ न जाए, इसलिए सल्लेखना-संथारा उत्कृष्ट साधना का अन्तिम ध्येय है। आत्महत्या हमेशा कषायों के कारण होती है और संथारा कषायों को वश में करने का अन्तिम लक्ष्य है।** कामना-इच्छाओं में मरने वाला नरक-निगोद पा सकता है, लेकिन सारी इच्छाओं और कामनाओं से मुक्त होने वाला मुक्ति पथ का राही बनता है। आत्महत्या करने वाला किसी घटना अथवा हालात से आहत होकर अप्रिय कदम उठाता है, परन्तु संथारा पूर्ण विवेक, धर्म के आलम्बन, परमात्मा की साक्षी लेकर, बहुत खुशी और सन्तुष्टि के साथ अपनाया जाता है। वह सारे साधनों का पूर्ण त्यागी हो जाता है, वहीं कोई खुदकुशी करने वाला ज़हर तो कोई आग, कोई पानी तो कोई पेड़ या पंखे का सहारा लेता है। **संथारा खुद में खुद के लीन होने की वह साधना है जिसे मृत्यु या खुदकुशी के समान मानना विडम्बना ही कहेंगे।** संथारे में अपने जीवन के कण-कण को देखना, निहारना पड़ता है। तभी तो सारे कषायों का अंत हो पाता है। कहीं किसी कोने में किसी से राग-द्वेष तो नहीं बचा, उन सबसे वह क्षमायाचना के साथ अपनी आत्मा को पावन करता है। कहीं मोह-ममता शेष तो नहीं रह गई, उन सबसे जुदा होना संथारा कहा गया है। भगवान में लीन होना सारे धर्मों में सर्वोत्तम साधना मानी गई है और संथारा भी उसी का एक त्यागमय स्वरूप है। जीने की कोई आस नहीं, मरने की कोई अभिलाषा नहीं, किसी की क्षति नहीं, किसी का कोई अहित नहीं, किसी का भी अनादर नहीं, इसे ही संथारा कहते हैं। **महज खाना-पीना छोड़ना सल्लेखना नहीं है, वरन् अन्दर में उपजे राग-द्वेष, मोह-ममता को अन्तिम सांस तक मिटाना, यानी समस्त आसक्तियों से मुक्त होना संथारा है।** 18 पापों में से कोई भी पाप मेरे जीवन में अब न रहें, यह अन्तिम क्षण तक देखने व उन्हें छोड़ने की सम्यक् साधना का पथ है। इसीलिए इसे पूर्ण जागृति की अन्तिम घड़ी तक की साधना कहा गया है। ध्यान रहे- जो आत्मा सबसे क्षमा, सबको क्षमा करके जाती है, उसका परलोक सदा अच्छा हुआ है और आगे भी होगा।

मृत्यु और मुक्ति में अन्तर है, क्या इस पर कभी चिन्तन किया? **प्राण रहते हुए जो इच्छाओं के साथ मरता है, वह मृत्यु है और जो प्राण रहते हुए इच्छाओं को पूर्णतया समाप्त कर देता है, वही मुक्ति का पथ है।** जैनदर्शन में इसे संलेखना-संथारा कहा गया है। अपनी इच्छाओं और कामनाओं से छुटकारा पाना कोई सहज या

सरल बात नहीं है। अंत समय में भी प्रायः संसारी प्राणी हाय-हाय करता है या फिर से दुकान-मकान-बेटा-पोता-पत्नी-धन-दौलत-डॉक्टर-दवाई आदि याद आते हैं। यानी जड़ पदार्थों से ममत्व छूट ही नहीं पाता। शरीर के प्रति इतनी आसक्ति रहती है कि उसे फिर स्वस्थ-नीरोग करने के लिए अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार दिल्ली-जयपुर-मुम्बई और अमेरिका आदि सुदूर देशों तक ले जाया जाता है। मुक्ति के भाव उसी भव्य जीव के भीतर से जागृत हो पाते हैं जो धर्म से सिर्फ जुड़ा हुआ ही नहीं वरन् उसके प्रति अन्तर् में पूर्ण समर्पित रहता है। वही साधक अंत समय में सिर्फ शरीर से नहीं, बल्कि संसार की तमाम वस्तुओं, रिश्तों-नातों से अपना नाता तोड़कर मिटती हुई काया में आत्म-दर्शन का तत्त्व-द्रष्टा बन जाता है। उसे फिर जीने की एवं मरने की किसी प्रकार की कोई आकांक्षा लेशमात्र भी नहीं रहती। इसे ही तो जैन दर्शन ने सल्लेखना-संथारा यानी समाधिपूर्वक हँसते-हँसते मरण कहा है। ऐसा मरण ही तो महोत्सव कहलाता है, क्योंकि जन्म लेते वक्त हर जीव रोता हुआ ही जन्मता है और अधिकांश रोते हुए ही मरण अवस्था को प्राप्त कर पाते हैं। वे कोई-कोई ही भव्य जीव होते हैं जो रोते-रोते नहीं, मरते वक्त हँसते-हँसते संसार सागर से कूच कर जाते हैं। यही तो जीवन की अन्तिम सर्वोत्तम साधना का स्वरूप है, जो भव-भ्रमण घटाने व मुक्ति दिलाने में सहयोगी है। ध्यान रहे- संलेखना-संथारा लेकर देह छोड़ने वालों की सेवा के लिए बड़े-बड़े देवता भी तरसते हैं, क्योंकि देवता भी ऐसी सम्यक् साधना करने में भी समर्थ नहीं होते। सिर्फ और सिर्फ मानव भव में मुक्ति व संथारे की साधना संभव है। **उसे अपराध कहना शाश्वत धर्म का अपमान है, क्योंकि अपने स्वयं के जीवन में जाने-अनजाने में हुई छोटी-बड़ी तमाम भूलों व अपराधों का समापन करने की यह अन्तिम सम्यक् साधना है।** यह काया को भी दुःख देने के लिए नहीं, बल्कि काया में रही हुई आत्मा में लीन होने की पवित्र साधना है। इसी से मुक्ति के द्वार खुल पाते हैं क्योंकि रोता-रोता कभी सद्गति को प्राप्त नहीं होता वरन् जो हँसते-हँसते समता व समाधि में लीन होकर जाता है, वही मोक्ष रूपी मुक्ति पाता है।

सिर्फ जागरूक आत्मा में ही संलेखना-संथारा के भाव पैदा होते हैं। जब प्रकृति ने सम्मान सहित जीने का मौका दिया है, फिर कानून द्वारा सम्मान सहित मरने का अधिकार क्यों नहीं हो सकता? जो स्वयं इच्छाओं का ही निरोध कर देता है, तब उसके इच्छा-मृत्यु कहना भी असंगत है। मरता वह है जो मिथ्यात्व में जीता है, लेकिन जो आत्म-स्वरूप में लीन हो जाता है, उसका मरण नहीं, महोत्सव हो जाता है। वे चाहे सुप्रसिद्ध वैष्णव संत श्री रामसुखदासजी रहे हों या संत श्री शरणानन्दजी महाराज, सभी ने प्राण रहते हुए स्वेच्छापूर्वक अपनी तमाम इच्छाओं को खत्म करने की साधना को ही मुक्ति का पथ कहा है। ऐसे जीवों का परभवों में जन्म-मरण शीघ्र घट जाता है। जीने के साथ जिसने मरण की कला भी सीख ली, वही तो आत्म-सुखों का अधिकारी बनता है। आत्म-सुख किसी दुकान पर नहीं मिलते, बल्कि वे अन्तर् में उतरने पर दृष्टिगोचर हो जाते हैं। जिसने शरीर और आत्मा को जुदा करके होश पूर्ण जीवन जीने की साधना का पथ अंगीकार कर लिया, वही फिर उस पथ का अनुगामी बन पाता है। जिस आत्मा को शरीर पराया अनुभव होने लगता है, वही आत्मा मुक्तिपुरी का महत्त्व अनुभव कर पाती है। मुक्ति महज कोई शब्द नहीं, बल्कि जीवन की सम्पूर्ण यात्राओं का समापन है और इसके लिए देह सहित तमाम इच्छा-कामनाओं से पूर्ण रूपेण नाता तोड़ना पड़ता है। न कोई मित्र है न कोई दुश्मन, न कोई पराया, मुझमें और प्रत्येक जीव में मेरी जैसी ही समान आत्मा रही हुई है, ऐसी अनुभूति करके जो जीवन भर उनकी रक्षा के प्रति मन-वचन-काया से समर्पित व जागरूक रहता है उस भव्य जीव में ही अंत समय में मुक्ति यानी संथारा का भाव जागृत हो पाता है। फिर आहार-पानी-दवा-वस्त्र यानी तमाम भौतिक साधनों से जीव विरक्त होकर सिर्फ आत्मा की चेतना में स्वयं को विलीन करता है। शरीर से भी पराएपन की स्पष्ट अनुभूति होना सहज हो जाता है। फिर वह यही सोचता है कि यह शरीर भी उधार में मिला था, जिसे छोड़कर भगवान के स्वरूप को प्राप्त करने में ही परम शान्ति है। ये भाव-मौत को आमन्त्रण के नहीं हैं, वरन् ज्योत में ज्योति का विलीनीकरण है। ■

श्रद्धार्पण

धन्य है संथारा साधिका

व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबालाजी म.सा.

धन्य है जिनशासन, धन्य है संथारा साधिका,
धन्य है सहकारी-सहयोगी-सेवाभाविनियों को,
''धण्णेसि णं तुमं देवाणुप्पिया''।

शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा.-

गुरु हस्ती-हीरा से तेज को पाया,
लघुवय में रत्नत्रय को अपनाया,
सुशील-शिक्षाशील बन अध्ययन विकसाया,
उत्तर-दक्षिण में चन्द्र ज्यों चमकाया,
ज्ञान-दर्शन-चारित्र से शासन को महकाया,
अन्त में सजग-सचेत-संथारा और सवाया।

समर्पण, तेजस्विता, प्रवचनपटुता एवं अप्रमत्तता से सम्पन्न साध्वीप्रमुखा का सजग संथारा:-

कर्म कर्दम को सुखाने वाला,
संयम की श्रेष्ठता को बढ़ाने वाला,
आत्मशुद्धि की औषधि,
आराधकता का प्रमाणपत्र,
अध्यात्म भावों की जगमगाती ज्योति
अवगुणों का अन्त-शुद्धि को जीवन्त करने वाला
अद्भुत-अनुपम- 'संथारायुक्त पण्डितमरण'
सहज नहीं ऐसे सारे योग मिलना-
गुरु हस्ती-हीरा-मान का उपकार,
महासती लाड-बदन-सायर का उपकार,
गौतममुनिजी म.सा. का उत्तम सहकार,
नन्दीषेणमुनिजी म.सा. का सहकार,
प्रमोदमुनिजी म.सा. के श्रेष्ठ विचार,
मनीषमुनिजी म.सा. का उग्र विहार,
सौभाग्य चमका,
शिष्याएँ अष्टादश पहुँच गये कर दक्षिण प्रचार-
चउ तरफ गूँज रही है संथारे की जय-जयकार,
महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. की जय-जयकार।।

श्रद्धार्पण

अहो! वह संकल्प, समर्पणा, निस्संगता और सजगता

महासती श्री भाग्यप्रभाजी म.सा.

जिनशासन स्व को जीतने का शासन है। इसके सिद्धान्त आत्मविजेताओं के द्वारा आत्मजय के पिपासुओं के लिए फरमाए गए हैं। इस त्रिकाल विजयी शासन को समर्पित महापुरुषों के जीवन प्रसंगों को पढ़ें तो सपष्ट विदित होता है कि यहाँ उदय में उदय करने वाले साधक भी हुए तो अस्त में उदय करने वाले साधक भी हुए। जब पुण्य का उदय था तो उन छायादार पलों में भी उन्होंने निज मार्ग तय किया साथ ही पाप की कड़ी धूप वाले क्षणों में भी उनके कदम निर्णीत पथ से डिगे नहीं। उनकी आत्मा तो कर्मों को ललकारती रही- ओ कर्मो! मैं कोई स्पंज नहीं जो तुम्हारे दबाव में दब जाऊँ, मैं कोई रूई नहीं जो तुम्हारे उड़ाने से उड़ जाऊँ, मैं कोई चिन्गारी नहीं जो कर्म पवन से बुझ जाऊँ। मैं तो एक ऐसा यात्री हूँ जो संकटों की चमकती बिजलियों में भी रास्ता तय करना जानती हूँ, कष्टों की बाढ़ में भी नाव को किनारे पहुँचाना जानती हूँ। मैं कोई कागज का टुकड़ा नहीं जो तूफान से उड़ जाऊँ, अपितु मैं वह रॉकेट हूँ जो संकटों के तूफानों में भी निर्णीत स्थल पर पहुँचता है।

दशार्णभद्र राजा के अभिमान को झुकाने का देवता ने प्रयास किया, परन्तु वे संयम के अभिमुख हुए और झुकाने की भावना रखने वाला देव ही झुक गया। ठीक वैसे ही साधक जीवन भर उत्थान-कर्म-बल-वीर्य पुरुषाकार-पराक्रम के अस्त्रों-शस्त्रों के द्वारा कर्मों से युद्ध करता रहता है एवं हर बार विजेता बनता है। उसकी श्रद्धा की ज्योत अखण्डित बनी रहती है। जीवन के अन्त में ऐसा समय आता है जब उत्थान-कर्म-बल-वीर्य पुरुषाकार पराक्रम रूपी शस्त्रों की धार वृद्धावस्था, रोग-आक्रमण आदि के कारण कम पड़ जाती है। वह क्षण कर्म सत्ता की जीत के न बन जाएँ, अतः साधक उन क्षणों में अंतिम वार के रूप में ऐसा प्रहार करता है कि कर्म सत्ता नतमस्तक हो जाती है। यह अंतिम प्रहार ही संथारा कहलाता है। झुकाने वाली कर्म सत्ता झुक जाती है। ऐसा ही कर्म-सत्ता पर उत्तम व उत्कृष्ट अंतिम प्रहार पूज्या महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. ने किया। उन्होंने संथारे को मात्र धारण ही नहीं किया, अपितु उस महाराधना को अपने प्राणों से जीया था। उनके दर्शन से दर्शनार्थी सहज ही संथारे के महत्त्व को, लक्ष्य को, अभिप्राय को, परिभाषा को समझ सकते थे। उनका हर क्षण साधना की सुवास से सुवासित था।

अहो वह संकल्प!

जवानी में अठाई भी इतनी क्लिष्ट नहीं है जितना वृद्धावस्था में उपवास तथा स्वस्थता में मासक्षपण भी इतना कठिन नहीं है जितना रोगावस्था में तेला। यह सहज समझा जा सकता है। पूज्या साध्वी प्रमुखाजी के शुगर अधिक होने के कारण कई दिनों पूर्व से ही लघु नीत के साथ बहुत ही रक्त आ रहा था। उस समय उन्हें विशेष वेदना भी रहती थी। मधुमेह की बीमारी ने अपने ताण्डव नृत्य का स्थल पूज्या गुरुवर्या के देह को बनाया, ऐसे समय सामान्य जन मानस तो उपचार प्राप्ति के लिए व्याकुल हो उठता है। ठीक ही कहा है कि कमजोर मन वालों के लिए परिस्थितियाँ समस्या बन जाती है, स्थिर मन वालों के लिए परिस्थितियाँ चुनौती बन जाती है तथा मजबूत मन वालों के लिए परिस्थितियाँ अवसर बन जाती हैं। ऐसी असाता की परिस्थिति को श्रद्धास्पद पूज्या ने संथारे का अवसर माना व स्वयं बोलकर अनेक बार संथारे की मांग की। कर्म-सत्ता ने रोग के रूप में उनके देह पर बम्बबारी की, वह सफल हो, उससे पहले आदरास्पदा पूज्या ने अपनी देह की मालकियत छोड़ दी। इससे कर्मसत्ता उन्हें कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचा सकी, वे विजयी बनीं। उनकी तो उसी समय चौविहार संथारे की उत्कृष्ट भावना थी, परन्तु परिचर्या में रहने

वालों को पानी का त्याग करवाना उस समय उचित नहीं लगा, अतः तिविहार संथारे की जयकार हुई।

अहो वह समर्पणा!

जब देह में वेदना होती है तो देहासक्त का मन वहाँ अटक जाता है कि उन्हें नवकार-स्मरण भी भारी लगता है। चित्त की व्याकुलता धर्म-श्रवण की पात्रता को समाप्त कर देती है। पूज्या शासनप्रभाविका जी ने तो मानो भेद-विज्ञान कर लिया था। उन क्लिष्ट क्षणों में भी वे तल्लीन होकर संत भगवन्तों के मुखारविन्द से शास्त्र-श्रवण करती थीं। कहीं-कहीं पर तो वे स्वयं ही गाथा के चरणों को पूर्ण करती थीं। शास्त्र सुनाने वाले भी आनन्द से भर जाते थे तथा इन दृश्यों को देखकर दर्शनार्थियों के शीश भी श्रद्धा से झुक जाते थे।

जिस अवस्था में करवट भी कष्टकारी साबित हो रही थी, उन क्षणों में पूज्य उपाध्यायप्रवर के पधारने पर बैठे होने की भावना की अभिव्यक्ति तब तक करती रहती थीं, जब तक परिचर्या लीन महासतियाँ उन्हें बैठा न कर देतीं। बैठने के बाद हाथ के आवर्तन से भावपूर्ण वन्दना का दृश्य जिसने भी देखा, वह भाव-विभोर हुए बिना नहीं रहा। पूज्य उपाध्यायप्रवर के पधारने पर व लौटते समय, दोनों समय पूज्या गुरुवर्याजी वन्दना करकेअपनी भावनाओं को तो व्यक्त करती ही थी, साथ ही चार अंगुलियाँ दिखाकर बार-बार चौविहार प्रत्याख्यान की अपनी इच्छा व्यक्त करती थीं। जैसे कोई गाँठ फूटी हो, लघुनीत स्थल पर इतनी भारी वेदना में भी उन्होंने जल से भीगे वस्त्र की कामना न करके जल-त्याग की भावना की पुनःपुन अभिव्यक्ति की। देह को अशुचि का पिण्ड जिसने स्वीकार कर लिया हो, यावत् अनुभव कर लिया हो, तब ही ऐसी उच्चतम श्रेणि में आत्मा पहुँच सकती है।

उनकी समर्पणा आगम के प्रति, आगम को जीने वाले उपाध्याय भगवन्त, संत भगवन्तों के प्रति तो थी ही, साथ ही अपने आराध्य गुरु हस्ती एवं गुरु हीरा के प्रति भी कम नहीं थी। नाम लेने मात्र से उनके चेहरे पर जिस समाधि के दर्शन होते थे, वे अलौकिक थे।

अहो वह पुण्यवानी!

हृदयास्पद पूज्या के भीतर जैसे ही संथारे की भावना ने बल लिया कि उनकी पुण्यवानी से श्रद्धेय श्री गौतममुनिजी म.सा. दर्शन देने पधारे व तप की प्रेरणा फरमाई। पुण्यवानी की प्रबलता कि उनकी भावना लगभग 70-80 कि.मी. दूर विराजे हुए आचार्य भगवन्त के भीतर में संथारे की आज्ञा प्रदान करने के भाव जगाने वाली बनी।

श्रद्धेय श्री मनीषमुनिजी म.सा. के कदमों ने पावटा स्थानक की ओर दिशा ली व संथारे की स्वीकृति मिली। ऐसा सुयोग बना कि संथारा ग्रहण का अवसर बाल ब्रह्मचारी मुनिवर से आया। स्वयं भी बाल ब्रह्मचारी व संथारा पच्चखाने वाले भी बाल ब्रह्मचारी। उनकी पुण्यवानी तो सूर्य के जैसे चमकती रही कि पूज्य उपाध्यायप्रवर की जहाज भी उन्हें सहयोग देने पधारी। एक-एक सती मण्डल का सिंघाड़ा अपनी शक्ति से दुगुना-तिगुना विहार करके उस स्थल पर पहुँचता रहा।

पुण्यवानी की प्रखरता कि आध्यात्मिकता के जीवन्त आकार जैसे संत श्रद्धेय श्री प्रमोदमुनिजी म.सा. आदि ठाणा 4 भी लम्बे-लम्बे विहार कर वहाँ पधारे। रत्नसंघ के 20 सन्त भगवन्तों में से 14 सन्त भगवन्तों को आपकी पुण्यवानी ने अपने द्वार बुलवा लिया। भले ही भक्तों के भगवान आचार्य भगवन्त उस पावन धरा पर सशरीर उपस्थित नहीं दिख रहे थे, फिर भी सभी को ऐसा प्रतीत होता था मानो वे उपस्थित ही हैं। सारी बागडोर संभाले हुए हैं।

पूज्या साध्वीप्रमुखाजी की यह सराहनीय पुण्यवानी ही थी कि उनकी शिष्याएँ सम्पूर्ण रात्रि भी उन्हें धार्मिक सहकार देने के लिए आतुर रहती थीं। उनके लिए उनका आत्महित प्रमुख बना, परिणामतः सभी के लिए उनका आत्महित प्रमुख बन गया। यह परिस्थिति की प्राप्ति पुण्यानुबन्धी पुण्य से प्राप्त हुई, जिसका सदुपयोग निर्जरा के लिए चल रहा था।

अहो वह निस्संगता!

पूज्या शासन प्रभाविका जी ने अकिंचनता को शतशः जीना प्रारम्भ कर दिया था। उनकी समता ऐसी सधी हुई थी कि किसी के सामने आने पर भी उनकी चेहरे पर उभरी हुई समाधि न्यूनाधिक नहीं होती थी। किसी के प्रत्यक्ष एवं प्रतिकूलता होने पर उन्हें पूर्व प्रसंग स्मृति में आयें, इससे वे पूर्ण अतीत हो चुकी थीं। अनुकूलता में उन्हें भिन्नता प्रतीत नहीं हो रही थी। उनके चेहरे की सहजता इस बात की प्रमाण थी। पूज्या ज्ञानलता जी म.सा. व पूज्या चारित्रलताजी म.सा. जिनकी वे शिक्षा-गुरुणी भी थीं, तो दीक्षा-गुरुणी भी थी, उनके सोलह वर्ष बाद प्रत्यक्ष होने पर भी पूज्या गुरुवर्या के चेहरे पर एक हल्की सी स्मित भी नहीं थी तो दूसरी ओर देह में हो रही असातावश उबकाई आना, खुजली चलते रहना जैसी प्रतिकूलता में भी वे रंजित नहीं थीं। वेदना में संवेदना रहित अवस्था सभी के हृदय की श्रद्धा को अनन्त गुणित करती रहती थी।

साधना की मूक-प्रेरिका का जीवन इतना सध गया था कि जब भी कोई उनके देह का परिकर्म करने का प्रयास करता तो वे उन परिकर्मशीला साध्वियों को इससे रोकती। उनकी देह-साता की प्यास मानो मिट चुकी थी। तब समझ में आता गुरुणी सा बोल सकते हैं, परन्तु हस्ती गुरु की कृपापात्र गुरुवर्या दिनभर में किसी से सम्पर्क रूप एक शब्द भी नहीं बोलते थे यावत् पूरे संथारे के काल में उन्होंने एक बार भी अपनी वेदना बोलकर अभिव्यक्त नहीं की। साधारण-व्यक्ति तो छोटी सी वेदना भी सबको बोलते रहते हैं, चाहे कोई सुनना चाहे या न चाहे, परन्तु आदरास्पद पूज्या का एक शब्द सुनने के लिए अनेक कर्ण तरस रहे थे। फिर भी पूरे संथारे में वे मौन थीं। इन कठिन पलों में भी उनका वचनयोग पर नियंत्रण अविस्मरणीय था। उन्होंने अपने त्रियोग की लगाम कसकर पकड़ रखी थी। ऐसे दृश्य को देखते हुए भक्तों को स्वयं की पलकों का झपकना भी मानो अवरोध लगता था।

अहो वह सजगता!

पूज्या शासनप्रभाविका को जब भी पानी के प्रत्याख्यान पराये जाते (पूर्ण होते), पहले तो वे जल-ग्रहण करने को मना ही करते, परन्तु उनके चरणों में सर्वतोभावेन समर्पित पूज्या श्री चन्द्रकलाजी म.सा. जब उन्हें दो-तीन बार कहते कि आपको तिविहार संथारा कराया है, चौविहार नहीं। हमने पानी के पच्चक्खाण भी परवा दिये हैं तो ही वे एक-दो घूँट जितना पानी ग्रहण करते। जल-ग्रहण का कार्य पूर्ण नहीं होता उससे पूर्व ही वे इशारे से बार-बार मुँहपत्ती माँगते और पुनः चौविहार पच्चक्खाने में 5-10 मिनिट भी देरी करना चाहते तो वे स्वयं ही पच्चक्खाण कर लेते थे। यह थी मरणशय्या पर भी उनकी वन्दनीय नमस्करणीय सजगता। जब संत भगवन्त उन्हें आलोचना आदि सुनाते तो वे गिनकर तीन-तीन बार मिच्छामि दुक्कडं देते। निर्दोष बन जाने की उनकी प्रबल भावना भी उनकी अन्त तक सजगता का ही परिणाम था।

अहो वह प्रस्थान!

6 दिसम्बर का दिन उनके प्रस्थान का दिन रहा। जीने व मरने की इच्छा से मुक्त साधिका का स्वास्थ्य उस दिन सुबह से ही नरम था। करुणाधारी मुनि भगवन्तों ने उस दिन अधिक धर्म-श्रवण करवाने का सहकार किया। साथ ही पूज्य उपाध्याय भगवन्त जिनके लिए दो कदम भी चलना आसान नहीं हैं, वे स्वयं उस दिव्य आत्मा को सहकार देने दो बार पधारे। पूज्य उपाध्याय भगवन्त जब भी सुख-साता पूछते- पूज्यवर्या का श्रद्धा का उठता वेग स्पष्ट दिखता था। दोपहर को श्रद्धेय श्री प्रमोदमुनिजी म.सा. ने विस्तार से वृहद् आलोयणा पूर्ण सुनाई, सभी संत भगवन्त उस साधनालीन आत्मा के भाव वर्धापन के लिए एक साथ पधारे।

पूज्य उपाध्याय भगवन्त ने वापस दर्शन न हो तब तक चौविहार के प्रत्याख्यान करवाये। धीरे-धीरे आत्मा देह को छोड़ने को व्याकुल होने लगी। नाड़ी गति मंद होने लगी। संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री पी. शिखरमल जी

सुराणा के साथ आचार्य भगवन्त के समाचार आए कि चौविहार संथारा करा दिया जाय। आराध्य आचार्य भगवन्त की आज्ञा-आराधनार्थ भाववर्धापन में परम भूमिका निभाने वाले श्रद्धेय श्री गौतममुनिजी म.सा. पधारे, जिन्होंने आजीवन चौविहार प्रत्याख्यान करवाये। बस वे ही क्षण प्रस्थान के क्षण.......।

धीरे-धीरे श्वासों का विरहकाल बढ़ने लगा, चारों ओर से 'अरिहन्ते सरणं पव्वज्जामि' की गुंजार चल रही थी। शरीर की स्पन्दनाएँ मन्द-मन्दतर -मन्दतम होने लगीं। उनके चारों ओर महासतियाँ, उनके समक्ष संत भगवन्त.. पूज्या गुरुवर्या की धड़कनें रुक रही थी, उनके अनुरागियों की धड़कनें विरह पीड़ा से बढ़ रही थीं। आँखें खुली थीं, पर स्थिर थीं। श्वास है या नहीं, समझ पाना क्लिष्ट...। कुछ प्रयोग से जानने का प्रयास किया, पता चला... प्रस्थान हो चुका है। समीप में खड़े हुए भी नहीं समझ पाये, प्रस्थान कब हुआ अर्थात् अखण्डित समाधि....। मन में भी, तन में भी.... निराकुल अन्दर से भी बाहर से भी... गुरुवर्या! प्रेरित हो गए हम सबके प्राण, ऐसा था आपका प्रस्थान।

अहो हमारे शरणदाता!

संघशास्ता, आचार्य भगवन्त के मार्गदर्शन व आज्ञाओं में जीने वाले साधक-साधिका उनके हर निर्णय को सुनकर यह नहीं समझ पाते कि जो होने वाला होता है, वह पूर्व में ही भगवन्त के ज्ञान में झलक जाता है या भगवन्त जो फरमाते हैं वह सत्य हो जाता है। भगवन्त की उस महिमा का कारण कोई दैवीय शक्ति विशेष है या अवधिज्ञान की स्पर्शना है या साधना करते हुए भगवन्त का मति-श्रुत ही इस निर्मलता तक पहुँच चुका है। शरणार्थियों से सैकड़ों कि.मी. की दूरी पर विराजते हुए भी भगवन्त अपने निर्णयों से साधना में सुन्दरतम सहकार प्रदान करते हैं।

शोरापुर ग्राम में अचानक वेदनाग्रस्त हुई महासती श्री वैराग्यश्रीजी को वहाँ का सेवाभावी श्री संघ उपचार हेतु उन्हें रायचूर ले जाना चाहता था। भगवन्त से जब मार्गदर्शन मांगा गया तो कुछ देर चिन्तनशील रहने के पश्चात् भगवन ने फरमाया- "रात बीतने दो, फिर निर्णय लेंगे। वह आत्मा वर्धमान भाव में है, उन्हें सहयोग दो।" शाम को प्रतिक्रमण में विराजने से पूर्व वहाँ उपस्थित श्रावकों को संकेत किया- ज्योत अल्पकाल की है। स्वयं उत्तर भारत में विराजते हुए भी दक्षिण भारत में रही हुई साध्वी के संयम को निर्दोष रखने का महान् उपकार आचार्य भगवन्त ने अपनी निर्मल प्रज्ञा से किया। पूज्या गुरुवर्याजी को ससमय संथारे की आज्ञा फरमाना तो भगवन्त की कालज्ञता थी ही, साथ ही 6 दिसम्बर को दोपहर में भगवन्त ने अपनी आन्तरिक निर्मलता से चौविहार संथारा कराने का संकेत प्रदान किया। उनकी इस कृपा रश्मि के कारण ही पूज्या साध्वीप्रमुखाजी को आजीवन चौविहार संथारे का अवसर प्राप्त हुआ। भगवन्त की अष्ट सम्पदा, निरतिचार आराधना आत्मा की निर्मलता उनके लिए तो उपकारी है ही, साथ ही संघ के प्रत्येक सदस्य के लिए भी हितकारी व उपकारी है।

अहो वे क्षण!

संथारे की पूरी आराधना को देखने पर यह स्पष्ट विदित होता है कि यह भव्य आराधना तो फलयुक्त वृक्ष के तुल्य है, परन्तु इसका बीज पूज्य गुरुवर्या ने किसी आराधना में उत्कृष्ट रसायन के साथ बोया होगा। किसी आराधना को विशेषतया किया होगा। अपने जीवन में अरिहंत आदि चार शरण को भक्ति से भाव विभोर होकर ध्याया होगा। उन्होंने दोषों के प्रति विशेष ग्लानि भाव रखा होगा। जिसका जीवन सुंदर उसका मरण सुंदर। साधकों के जीवन में भी संथारा आना अति दुष्कर है। संथारे रूपी वटवृक्ष की छाया तले समाधिमरण व पुरुषार्थ का सुन्दर समागम है।

हमें प्रेरणा मिलती है कि हम हर साधना-आराधना को उत्कृष्ट अहो भाव से करें। हमारी आराधना में ऐसा उच्च रसायन हो कि हमारी मृत्यु भी महोत्सव बन सके। पूज्या गुरुवर्या जाते-जाते भी हमें प्रेरणा दे गई-

हिम्मत रख और चलता चल, तो प्रत्येक कदम अचल।
पीछे मुड़कर नहीं देखना, पहुँच जाएगा सिद्धि स्थल।।

श्रद्धार्पण

सच्चिदानन्द बने गुरुणी सा

श्री यल्लप्पा, गजेन्द्रगढ़

सन्थारा वरीयो ऊजळो, परिणामे चढ़ता भाव सूँ (धुव्र पद)
साध्वी प्रमुखा मैनासुन्दरीजी गुण रतनों री है खान।
पगल्या पूजूँ नित आपरा, किण-विध करूँ बखाण रे।।
'देहस्य सारं व्रत धारणं च' जान के गुरुणी जी सन्थारा को ठाना।
भेद विज्ञान जग्यो घट अन्तर, जड़-चेतन को पहिचाना रे।।
धर्म दीपायो वीर प्रभु रो, रतन संघ रो भाग्य सवाया।
ज्ञान री रोशनी घर-घर फैलाई, त्याग-तप रो ज्योत जगाया।।
आ कांई मन में आई आपरे, निर्मोही घणा गुरुणी सा म्हारा।
साक्षात् धर्म ने ते रमायो, गुरु हस्ती जिम वरीयो सन्थारा रे।
धर्मिष्ठ पिता रीडमलजी, ओसवाळ गोत्र है भण्डारी।
दीक्षा भूमि बारणी गाँव जाणो, मारवाड़ की छवि है न्यारी रे।।
जतनीदेवीजी महा पुण्यवन्ती, देखो इनका पुण्य महतार।
रतन कूंख सू थाने जाई पाळयो-पोस्यो लाड-प्यार रे।।
सायरकंवरजी मैनासुन्दरीजी, सगी जोडी है बैना री।
लोडी उम्र में छत्रच्छाया में, गुरु हस्ती से संजम धारी रे।।
अनुशासन तो जबर आपरो, चौथा आरा जिम देख्या।
बदनकंवरजी गुरुणी आपरी, इणरी गाओ है गुण-गाथारे।।
जीवन भर सिंह जिम धड़ूक्या, भिन्न-भिन्न करीने समझाया।
गुरु हस्ती रो डंको बजायो, गुरु मान हीरा को सम्मान बढ़ाया रे।।
विचर-विचर उपदेश सुणायो, वंचित क्षेत्र में कर्यो ज्ञान उजाला।
परीषह-बाधा संथारे घणा, भर-भर पायो जिनवाणी प्याला रे।
अपने प्राणों की परवाह नहीं कीन्हीं, दूजा ने आप खूब बचायो।
परमोपकारी गुरुणी मैया, कोई घटना है बतलाऊँ रे।।
निर्दोख निर्मल संयम पाळा, ज्ञान क्रियारी सुगन्ध फैलाई।
आण घर शीश चाल्यो गुणवन्ता, अमिट कहानी बनाई रे।।
त्याग-तप खिम्हा गुणों से पाप कर्मो को आप ने बाळा।
जागृत अवस्था में संलेखणा करी ने, दोहग्ग रा जड़िया ताळा रे।।
गल्ती औगुण हजार माफी बख्शो, लूळ लूळ लागूँ थारे पाय।
खमत खामणा हूँ करूँ छू मैया, जागती मन, वच, काय रे।।
मुगती गढ ने जीतवा को, तप री भट्टी में कर्मों ने सिझायो।
सच्चिदानन्द बने गुरुणी सा, इम 'यल्लप्पा' सन्थारा में गायो रे।।

English-Section

Santhara : The Jain Spiritual Practice of Death

Acharya Shri Mahāprajña

An Interview taken by India T.V. Channel of Acharya Shri Mahāprajña for context of Rajasthan High Court's Notice questioning *Santhara's* lawfulness.

Q. Acharyaji! What is the importance of the *pratha* (custom) of *santhara* in Jain Samaj?

A. Santhara is indeed a spiritual practice of penance. One who leads a noble life undertakes various practices of penances while living. When such spiritual personage would find, at the fag end of his life, that the body had already reached a tattered state, and would not last long, he would like to pass his last moments of life in complete tranquillity and composure through the practice of penance, in which he renounces food. But the essential condition in *Santhara* is that he should neither cling to life nor crave for early death. He should be completely equanimous. In such state of extreme mental peace, he reflects that if death occurs, let it come. This is anashana (fasting-unto-death).

Q. Then, what is the objective of such practice?

A. Let us understand clearly the objective of undertaking *santhara*- when the body has become too weak to be good-for-nothing, one should not have attachment to such death-bedded body. *Santhara* is nothing but an experiment to become free from such attachment. For, our greatest attachment is towards our body. As such, giving up of the bodily attachment is the most invincible task. It is thus an experiment in *sadhna* of detachment. In such highest state of detachment, there would be no attachment either for body or for food, and death occurring in such detached state would lead one to better reincarnation and better birth in next life. On the other hand; if he transmigrates with the bondage of attachment, his next birth cannot be noble. They who believe in the reincarnation theory profess that the next birth will not be noble if one is not free from intense attachments. Thus, Santhara means an experiment of cultivating detachment.

Q. Acharyaji! This *pratha* (custom) has been challenged through a writ in high court........ it is a very important tradition of Jainism. Can the Court intervene in this (religious) affair?

A. First of all the fact is that *Santhara* is not a *pratha* (custom). 'Custom' is that which is compulsory. Santhara is not compulsory at all; the fact, on the contrary, is that out of millions upon millions, hardly four to five persons take to

santhara. Hence, it is clear that it is not a *pratha*.

Secondly, it is doubtful whether the person who has filed the writ is well acquainted with the authentic information about *Santhara* (*anashana*) or not. Only it is being compared with *Satipratha*. But, in *satipratha*, the woman commits herself Sati after or for his dead husband, whereas *Santhara* is undertaken neither after someone nor for someone. The *Santhara* is accepted only for the pure object of one's own benevolent future. In *satipratha*, there is no consideration of the age of the woman committing Sati- she may be only 25 or so, whereas the *santhara* or *anashana* is practised only by a person on the death-bed. Hence, its comparison with *Satipratha* could be made only out of sheer ignorance. Dowary is also a custom. People are forced to give it and so on, there are many such customs. But 'anashana' can not be called a custom. It is only a practice for individual's *sadhana*. It is not at all a *pratha*. If those who have filed the writ would have collected factual information about *Santhara* from the experts, and then would have taken the step, it would have been reasonable, otherwise there is no legitimacy of doing so.

Santhara can neither be considered a custom, nor can it be compared to satiprath, nor can it deemed to be suicide. For, it is undertaken not with the objective of 'dying'. A person who is a spiritual practitioner undertakes *anashana* with a definite objective. Its objective is to live in the state of detachment, as I have already mentioned. There are two main causes of attachment- food and body. It is indeed a great spiritual practice to become detached to both these.

Q. Do you mean Acharyaji! that it is useless to move the court......?

A. Well, the propriety of challenging anything without understanding the issue holistically is beyond our understanding. If it were a general custom that every Jain must undertake *anashana*, it would be justified to move the court. But when it is not so, what is the sense in filing the writ? However, everyone is free to do so in the age of democracy. Even then, it would have been better that before filling the writ, one should have made a thorough study and collected full authentic information about *Santhara* from the experts/scholars who are well conversant with the subject, and then he would have moved the court; this would have been more reasonable. Whether one is a lawyer or someone else, there is always the scope for ignorance and delusion. Hence, I don't consider it proper to do so.

Perhaps, in my view, this is not an issue for the judiciary. If someone is undertaking his spiritual practice (*sadhana*), why should court interfere? If there were some atrocity or compulsion, then the court has to intervene. Or if it was a tradition or custom, then also it is its duty. But this is only an individual's

personal inclination for spiritual enhancement. Suppose a person thinks that he would observe penance (fasting) for 100 days (for his spiritual purity). Why should others inferfere? Even in Naturopathy Treatment, the patient has to undertaken fasting of Longer duration. Thus, someone may undertake such fasting for one's cure, other for one's spiritual upliftment or so, why there should be interference in his individual's matter. I don't think it proper or even relevent (or rational).

Q. Acharyaji! Some law experts have opined that santhara is a kind of contradiction. On one hand there is 'Law of the Land' and on the other hand there is such tradition which has its own history. Do you feel any contradiction between these two?

A. Well, I don't find any such contradiction there. The 'Law of the Land' is concerned with the suicide- a pure case of suicide, but *Santhara* is not suicide, nor it is relavent to consider it suicide. You have to make distinciton between suicide and *sadhana* (spiritual practice) *Santhara* is purely an undertaking of *sadhana* and that too you can't practise arbitraily at any time. It can be practised only under the condition when one feels that now the life-line is sinking and there is no hope whatsoever for living long, it is under such situation that one may take to Santhara-"I now shall do my sadhana by giving up food." How much difficult it is to give up food even for a day? Is it not uncommon that an old man or even one on the death-bed asks for a cup of tea! How colossal are human cravings, longings and attachments! In spite of them, if someone can pacify them and think in terms of 'renouncing food for spiritual practice', is it not great? If his line of thinking is-"Oh! till now I have eaten too much, drunk too much-now let me give up the clinging or attachment to food and drinks when my drama of life is going to end soon," is it not something great? something ideal? You see, the greatest hurdle in sadhana is that of body- you have to give up attachment to it. It is something free from care of body even while living in the body.

Q. Is there any kind of compulsion there?

A. No, there is no compulsion at all. As I have said, only one or two amongst thousands undertake *Santhara*. The total population of Jains, if we don't believe the official number, is more than one crore, not less than it, And again there are several crores people who are in one way or other in relation with them. Now, in a year, say hardly two to four persons might be taking *Santhara*. Thus, only a very very small percentage takes to *Santhara*; this can neither be considered as a *pratha* nor a tradition. It is only an individual *sadhana*.

शोधालेख

समाधिमरण : एक तुलनात्मक तथा समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. सागरमल जैन

जैन परम्परा के सामान्य आचार नियमों में संलेखना या संथारा एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। जैन गृहस्थ उपासकों एवं श्रमण साधकों दोनों के लिए स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण का विधान जैन आगमों में उपलब्ध है। जैन आगम साहित्य ऐसे साधकों की जीवन गाथाओं से भरा पड़ा है जिन्होंने समाधिमरण का व्रत ग्रहण किया था। अन्तकृत्दशांग सूत्र एवं अनुत्तरौपपातिक सूत्र में उन श्रमण साधकों का और उपासकदशांग सूत्र में आनन्द आदि उन गृहस्थ साधकों का जीवन दर्शन उपलब्ध है, जिन्होंने अपने जीवन की संध्या-वेला में समाधि-मरण का व्रत लिया था। उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार मृत्यु के दो रूप हैं- 1. समाधिमरण या निर्भयतापूर्वक मृत्युवरण और 2. भयपूर्वक मृत्यु से ग्रसित हो जाना।[1] समाधिमरण में मनुष्य का मृत्यु पर शासन होता है, जबकि अनिच्छापूर्वक मरण में मृत्यु मनुष्य पर शासन करती है। पहले को पण्डितमरण कहा गया है जबकि दूसरे को बालमरण (अज्ञानीमरण) कहा गया है। एक ज्ञानीजन की मौत है, दूसरी अज्ञानी की। अज्ञानी विषयासक्त होता है और इसलिए वह मृत्यु से डरता है, जबकि सच्चा ज्ञानी अनासक्त होता है अतः वह मृत्यु से नहीं डरता है।[2]

महावीर के दर्शन में अनासक्त जीवन शैली की यही महत्त्वपूर्ण कसौटी है, जो साधक मृत्यु से भागता है, वह सच्चे अर्थ में अनासक्त जीवन जीने की कला से अनभिज्ञ है। **जिसे अनासक्त मृत्यु की कला नहीं आती उसे अनासक्त जीवन की कला भी नहीं आ सकती।** इसी अनासक्त मृत्यु की कला को महावीर ने संलेखना व्रत कहा है। जैन परम्परा में संथारा, संलेखना, समाधिमरण, पण्डितमरण और सकाममरण आदि निष्काम मृत्युवरण के ही पर्यायवाची नाम हैं। आचार्य समन्तभद्र संलेखना की परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि आपत्तियों, अकालों, अतिवृद्धावस्था एवं असाध्य रोगों में शरीर त्याग करने को संलेखना कहते हैं[3], अर्थात् जिन स्थितियों में मृत्यु अनिवार्य सी हो गई हो उन परिस्थितियों में मृत्यु के भय से निर्भय होकर देहासक्ति का विसर्जन कर मृत्यु का स्वागत करना ही संलेखना व्रत है।

समाधिमरण के भेद

जैन आगम ग्रन्थों में मृत्युवरण के अवसरों की अपेक्षा के आधार पर समाधि-मरण के दो प्रकार माने गये हैं- 1. सागारी संथारा और 2. सामान्य संथारा।

सागारी संथारा- जब अकस्मात् कोई ऐसी विपत्ति उपस्थित हो, जिसमें से जीवित बच निकलना संभव प्रतीत न हो, जैसे आग में गिर जाना, जल में डूबने जैसी स्थिति हो जाना अथवा हिंसक पशु या किसी ऐसे दुष्ट व्यक्ति के अधिकार में फँस जाना जहाँ सदाचार से पतित होने की संभावना हो, ऐसे संकटपूर्ण अवसरों पर जो संथारा ग्रहण किया जाता है, वह सागारी संथारा कहलाता है। यदि व्यक्ति उस विपत्ति या संकटपूर्ण स्थिति से बाहर हो जाता है तो वह पुनः देह-रक्षण के सामान्य क्रम को चालू रख सकता है। संक्षेप में अकस्मात् मृत्यु का अवसर उपस्थित हो जाने पर जो संथारा ग्रहण किया जाता है, वह सागारी संथारा मृत्यु-पर्यन्त के लिए नहीं, वरन् परिस्थिति विशेष के लिए होता है। अतः उस परिस्थिति विशेष के समाप्त हो जाने पर उस व्रत की मर्यादा भी समाप्त हो जाती है।[4]

सामान्य संथारा- जब स्वाभाविक जरावस्था अथवा असाध्य रोग के कारण पुनः स्वस्थ होकर जीवित रहने की

समस्त आशाएँ धूमिल हो गयी हों, तब यावज्जीवन तक जो देहासक्ति एवं शरीर-पोषण के प्रयत्नों का त्याग किया जाता है और जो देहपात पर ही पूर्ण होता है वह सामान्य संथारा है। सामान्य संथारा ग्रहण करने के लिए जैन आगमों में निम्न स्थितियाँ आवश्यक मानी गयी हैं-

जब शरीर की सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्यों के सम्पादन करने में अयोग्य हो गयी हों, जब शरीर का माँस एवं शोणित सूख जाने से शरीर अस्थिपंजर मात्र रह गया हो, पचन-पाचन, आहार-निहार आदि शारीरिक क्रियाएँ शिथिल हो गयी हों और इनके कारण साधना और संयम का परिपालन सम्यक् रीति से होना संभव नहीं हो, इस प्रकार मृत्यु का जीवन की देहली पर उपस्थित हो जाने पर ही सामान्य संथारा ग्रहण किया जा सकता है।[5] सामान्य संथारा तीन प्रकार का होता है-

(अ)भक्तप्रत्याख्यान- आहार आदि का त्याग करना।

(ब) इंगितमरण- एक निश्चित भू-भाग पर हलन-चलन आदि शारीरिक क्रियाएँ करते हुए आहार आदि का त्याग कर देना।

(स)पादोपगमन- आहार आदि के त्याग के साथ-साथ शारीरिक क्रियाओं का निरोध करते हुए मृत्यु-पर्यन्त निश्चल रूप से लकड़ी के तख्ते के समान स्थिर पड़े रहना।

उपर्युक्त सभी प्रकार के समाधि-मरणों में मन का समभाव में स्थित होना अनिवार्य माना गया है।

समाधिमरण ग्रहण करने की विधि

जैन आगमों में समाधिमरण ग्रहण करने की विधि निम्नानुसार बताई गयी है- सर्वप्रथम मलमूत्रादि अशुचि विसर्जन के स्थान का अवलोकन कर नरम तृणों की शैय्या तैयार कर ली जाती है। तत्पश्चात् अरिहन्त, सिद्ध और धर्माचार्यों को विनयपूर्वक नमस्कार कर पूर्वगृहीत प्रतिज्ञाओं में लगे हुए दोषों की आलोचना और उनका प्रायश्चित्त ग्रहण किया जाता है। इसके बाद समस्त प्राणियों से क्षमायाचना की जाती है और अन्त में अठारह पापस्थानों, अन्नादि चतुर्विध आहारों का त्याग करके शरीर के ममत्व एवं पोषणक्रिया का विसर्जन किया जाता है। साधक प्रतिज्ञा करता है कि मैं पूर्णतः हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से विरत होता हूँ, अन्न आदि चारों प्रकार के आहार का यावज्जीवन के लिए त्याग करता हूँ। मेरा यह शरीर जो मुझे अत्यन्त प्रिय था, मैंने इसकी बहुत रक्षा की थी, कृपण के धन के समान इसे संभालता रहा था, इस पर मेरा पूर्ण विश्वास था (कि यह मुझे कभी नहीं छोड़ेगा), इसके समान मुझे अन्य कोई प्रिय नहीं था, इसलिए मैंने इसे शीत, गर्मी, क्षुधा, तृष्णा आदि अनेक कष्टों से एवं विविध रोगों से बचाया और सावधानीपूर्वक इसकी रक्षा करता रहा था, अब मैं इस देह का विसर्जन करता हूँ और इसके पोषण एवं रक्षण के प्रयासों का परित्याग करता हूँ।[6]

बौद्ध परम्परा में मृत्युवरण

यद्यपि बुद्ध ने जैन परम्परा के समान ही धार्मिक आत्महत्याओं को अनुचित माना है, तथापि बौद्ध साहित्य में कुछ ऐसे संदर्भ अवश्य हैं जो स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण का समर्थन करते हैं। संयुक्तनिकाय में असाध्य रोग से पीड़ित भिक्षु वक्कलि कुलपुत्र[7] भिक्षु छन्न[8] द्वारा किए गए स्वयं मरण का समर्थन स्वयं बुद्ध ने किया था और उन्हें निर्दोष कह कर दोनों ही भिक्षुओं को परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला बताया था। जापानी बौद्धों में तो आज भी हरीकरी की प्रथा मृत्युवरण की सूचक है।

फिर भी जैन परम्परा और बौद्ध परम्परा में मृत्युवरण के प्रश्न को लेकर कुछ अन्तर भी है। प्रथम तो यह कि जैन परम्परा के विपरीत बौद्ध परम्परा में शस्त्रवध से तत्काल ही मृत्युवरण कर लिया जाता है। जैन आचार्यों ने

शस्त्रवध के द्वारा तात्कालिक मृत्युवरण का विरोध इसलिए किया था कि उन्हें उसमें मरणाकांक्षा की संभावना प्रतीत हुई। उनके अनुसार यदि मरणाकांक्षा नहीं है तो फिर मरण के लिए उतनी आतुरता क्यों? इस प्रकार जहाँ बौद्ध परम्परा शस्त्रवध के द्वारा की गई आत्महत्या का समर्थन करती है, वहीं जैन परम्परा उसे अस्वीकार करती है। इस संदर्भ में बौद्ध परम्परा वैदिक परम्परा के अधिक निकट है।

वैदिक परम्परा में मृत्युवरण

सामान्यतया हिन्दू धर्मशास्त्रों में आत्महत्या को महापाप माना गया है। पाराशरस्मृति में कहा गया है कि जो क्लेश, भय, घमण्ड और क्रोध के वशीभूत होकर आत्महत्या करता है, वह साठ हजार वर्ष तक नरकवास करता है[9], लेकिन इनके अतिरिक्त हिन्दू धर्मशास्त्रों में ऐसे भी अनेक संदर्भ हैं जो स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण का समर्थन करते हैं। प्रायश्चित्त के निमित्त से मृत्युवरण का समर्थन मनुस्मृति (11/90-91), याज्ञवल्क्यस्मृति (3/253),गौतमस्मृति (23/1), वशिष्ठधर्मसूत्र (20/22, 13/14) और आपस्तंबसूत्र (1/9/251-3,6) में भी किया गया है। मात्र इतना ही नहीं, हिन्दू धर्मशास्त्रों में ऐसे भी अनेक स्थल हैं, जहाँ मृत्युवरण को पवित्र एवं धार्मिक आचरण के रूप में देखा गया है। महाभारत के अनुशासन पर्व (25/62-64), वनपर्व (85/83) एवं मत्स्यपुराण (186/34/35) में अग्निप्रवेश, जलप्रवेश, गिरिपतन, विषयप्रयोग या उपवास आदि के द्वारा देह त्याग करने पर ब्रह्मलोक या मुक्ति प्राप्त होती है, ऐसा माना गया है। अपरार्क ने प्राचीन आचार्यों के मत को उद्धृत करते हुए लिखा है कि यदि कोई गृहस्थ असाध्य रोग से पीड़ित हो, जिसने अपने कर्त्तव्य पूरे कर लिए हों, वह महाप्रस्थान हेतु अग्नि या जल में प्रवेश कर अथवा पर्वतशिखर से गिरकर अपने प्राणों की आहुति दे सकता है। ऐसा करके वह कोई पाप नहीं करता। उसकी मृत्यु तो तपों से भी बढ़कर है। शास्त्रानुमोदित कर्त्तव्यों के पालन में अशक्त होने पर जीवन जीने की इच्छा रखना व्यर्थ है।[10] श्रीमद्भागवत के 11वें स्कन्ध के 18वें अध्याय में भी स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण को स्वीकार किया गया है। वैदिक परम्परा में स्वेच्छा मृत्युवरण का समर्थन न केवल शास्त्रीय आधारों पर हुआ है वरन् व्यावहारिक जीवन में इसके अनेक उदाहरण भी परम्परा में उपलब्ध हैं। महाभारत में पाण्डवों के द्वारा हिमालय-यात्रा में किया गया देहपात मृत्युवरण का एक प्रमुख उदाहरण है। डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे ने वाल्मीकि रामायण एवं अन्य वैदिक धर्मग्रन्थों तथा शिलालेखों के आधार पर शरभंग, महाराजा रघु, कलचुरी के राजा गांगेय, चंदेल कुल के राजा गंगदेव, चालुक्यराज सोमेश्वर आदि के स्वेच्छा मृत्युवरण का उल्लेख किया है।[11] मैगस्थनीज ने भी ईस्वी पूर्व चतुर्थ शताब्दी में प्रचलित स्वेच्छामरण का उल्लेख किया है। प्रयाग में अक्षयवट से कूद कर गंगा में प्राणान्त करने की प्रथा तथा काशी में करवत लेने की प्रथा वैदिक परम्परा में मध्य युग तक भी काफी प्रचलित थी।[12] यद्यपि ये प्रथाएँ आज नामशेष हो गयी हैं फिर भी वैदिक संन्यासियों द्वारा जीवित समाधि लेने की प्रथा आज भी जनमानस की श्रद्धा का केन्द्र है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि न केवल जैन और बौद्ध परम्पराओं में, वरन् वैदिक परम्परा में भी मृत्युवरण को समर्थन दिया गया है। लेकिन जैन और वैदिक परम्पराओं में प्रमुख अन्तर यह है कि जहाँ वैदिक परम्परा में जल एवं अग्नि में प्रवेश, गिरिशिखर से गिरना, विष या शस्त्र प्रयोग आदि विविध साधनों से मृत्युवरण का विधान मिलता है, वहाँ जैन परम्परा में सामान्यतया केवल उपवास द्वारा ही देहत्याग का समर्थन मिलता है। जैन परम्परा शस्त्र आदि से होने वाली तात्कालिक मृत्यु की अपेक्षा उपवास द्वारा होने वाली क्रमिक मृत्यु को ही अधिक प्रशस्त मानती है। यद्यपि ब्रह्मचर्य की रक्षा आदि कुछ प्रसंगों में तात्कालिक मृत्युवरण को स्वीकार किया गया है, तथापि सामान्यतया जैन आचार्यों ने तात्कालिक मृत्युवरण जिसे प्रकारान्तर से आत्महत्या भी कहा जा सकता है, की आलोचना की

है। आचार्य समन्तभद्र ने गिरिपतन या अग्निप्रवेश के द्वारा किये जाने वाले मृत्युवरण को लोकमूढ़ता कहा है।[13] जैन आचार्यों की दृष्टि में समाधि-मरण का अर्थ मृत्यु की कामना नहीं, वरन् देहासक्ति का परित्याग है। उनके अनुसार तो जिस प्रकार जीवन की आकांक्षा दूषित मानी गई है, उसी प्रकार मृत्यु की आकांक्षा भी दूषित मानी गयी है।

समाधिमरण के दोष

जैन आचार्यो ने समाधिमरण के लिए निम्न पाँच दोषों से बचने का निर्देश किया है- 1. जीवन की आकांक्षा 2. मृत्यु की आकांक्षा, 3. ऐहिक सुखों की कामना 4. पारलौकिक सुखों की कामना और 5. इन्द्रियों के विषयों के भोग की आकांक्षा।

जैन परम्परा के समान बुद्ध ने भी जीवन की तृष्णा और मृत्यु की तृष्णा दोनों को ही अनैतिक माना है। बुद्ध के अनुसार भवतृष्णा और विभवतृष्णा क्रमशः जीविताशा और मरणाशा की प्रतीक हैं और जब तक ये आशाएँ या तृष्णाएँ उपस्थित हैं तब तक नैतिक पूर्णता संभव नहीं है। अतः साधक को इनसे बच के ही रहना चाहिए। लेकिन फिर भी यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या समाधिमरण मृत्यु की आकांक्षा नहीं है?

समाधिमरण और आत्महत्या

जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों परम्पराओं में जीविताशा और मरणाशा दोनों को अनुचित माना गया है।[14] तो यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से खड़ा होता है कि क्या समाधिमरण मरणाकांक्षा नहीं है? वस्तुतः यह न तो मरणाकांक्षा है और न आत्महत्या ही। व्यक्ति आत्महत्या या तो क्रोध के वशीभूत होकर करता है या फिर सम्मान या हितों को गहरी चोट पहुँचने पर अथवा जीवन के निराश हो जाने पर करता है, लेकिन ये सभी चित्त की सांवेगिक अवस्थाएँ हैं जबकि समाधिमरण तो चित्त की समत्व की अवस्था है। अतः वह आत्महत्या नहीं कही जा सकती। दूसरे आत्महत्या या आत्मबलिदान में मृत्यु को निमंत्रण दिया जाता है। व्यक्ति के अन्तस् में मरने की इच्छा छिपी हुई होती है, लेकिन समाधिमरण में मरणाकांक्षा का अभाव ही अपेक्षित है, क्योंकि समाधिमरण के प्रतिज्ञा सूत्र में ही साधक यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं मृत्यु की आकांक्षा से रहित होकर आत्मरमण करूँगा (कालं अकंखमाणं विहरामि) यदि समाधिमरण में मरने की इच्छा ही प्रमुख होती तो उसके प्रतिज्ञा-सूत्र में इन शब्दों के रखने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। जैन विचारकों ने तो मरणाकांक्षा को समाधिमरण का दोष ही माना है। अतः समाधिमरण को आत्महत्या नहीं कहा जा सकता। जैन विचारकों ने इसीलिए सामान्य स्थिति में शस्त्रवध, अग्निप्रवेश या गिरिपतन आदि साधनों के द्वारा तात्कालिक मृत्युवरण को अनुचित ही माना है, क्योंकि उनके पीछे मरणाकांक्षा की संभावना रही हुई है। समाधिमरण में आहारादि के त्याग में मृत्यु की चाह नहीं होती, मात्र देह-पोषण का विसर्जन किया जाता है। मृत्यु उसका परिणाम अवश्य है लेकिन उसकी आकांक्षा नहीं। जैसे व्रण की चीर-फाड़ के परिणामस्वरूप वेदना अवश्य होती है लेकिन उसमें वेदना की आकांक्षा नहीं होती है। जैन आचार्य ने कहा है कि समाधिमरण की क्रिया मरण के निमित्त नहीं होकर उसके प्रतिकार के लिए है। जैसे व्रण का चीरना वेदना के निमित्त नहीं होकर वेदना के प्रतिकार के लिए होता है।[15] **यदि ऑपरेशन की क्रिया में हो जाने वाली मृत्यु हत्या नहीं है तो फिर समाधिमरण में हो जाने वाली मृत्यु आत्महत्या कैसे हो सकती है?** एक दैहिक जीवन की रक्षा के लिए है तो दूसरी आध्यात्मिक जीवन की रक्षा के लिए है।

समाधिमरण और आत्महत्या में मौलिक अन्तर है। आत्महत्या में व्यक्ति जीवन के संघर्षो से ऊब कर जीवन से भागना चाहता है, उसके मूल में कायरता है। जबकि समाधिमरण में देह और संयम की रक्षा के अनिवार्य विकल्पों में से संयम की रक्षा के विकल्प को चुनकर मृत्यु का साहसपूर्वक सामना किया जाता है। समाधिमरण में

जीवन से भागने का प्रयास नहीं वरन् जीवन-बेला की अन्तिम संध्या में द्वार पर खड़ी हुई मृत्यु का स्वागत है। आत्महत्या में जीवन से भय होता है, जबकि समाधिमरण में मृत्यु से निर्भयता होती है। आत्महत्या असमय मृत्यु का आमंत्रण है जबकि संथारा या समाधिमरण मात्र मृत्यु के उपस्थित होने पर उसका सहर्ष आलिंगन है। आत्महत्या के मूल में या तो भय होता है या कामना, जबकि समाधिमरण में भय और कामना दोनों की अनुपस्थिति आवश्यक होती है।

समाधिमरण आत्म-बलिदान से भी भिन्न है। पशु-बलि के समान आत्म-बलि की प्रथा भी शैव और शाक्त सम्प्रदायों में प्रचलित रही है। लेकिन समाधिमरण को आत्म-बलिदान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आत्म-बलिदान भी भावना का अतिरेक है। भावातिरेक आत्म-बलिदान की अनिवार्यता है जबकि समाधिमरण में भावातिरेक नहीं वरन् विवेक का प्रकटन आवश्यक है।

समाधिमरण के प्रत्यय के आधार पर आलोचकों ने यह कहने का प्रयास भी किया है कि जैन दर्शन जीवन से इकरार नहीं करता वरन् जीवन से इन्कार करता है, लेकिन गंभीरतापूर्वक विचार करने पर यह धारणा भ्रान्त ही सिद्ध होती है। उपाध्याय अमरमुनि जी लिखते हैं- ''वह (जैन दर्शन) जीवन से इन्कार नहीं करता है अपितु जीवन के मिथ्या मोह से इन्कार करता है। जीवन जीने में यदि कोई महत्त्वपूर्ण लाभ है और वह स्व-पर की हित साधना में उपयोगी है तो जीवन सर्वतोभावेन संरक्षणीय है।''[16] आचार्य भद्रबाहु भी ओघनिर्युक्ति में कहते हैं- साधक का देह ही नहीं रहा तो संयम कैसे रहेगा, अतः संयम की साधना के लिए देह का परिपालन इष्ट है।[17] लेकिन देह के परिगलन की क्रिया संयम के निमित्त है, अतः देह का ऐसा परिपालन जिसमें संयम ही समाप्त हो, किस काम का। **साधक का जीवन न तो जीने के लिए है न मरण के लिए है। वह तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सिद्धि के लिए है।** यदि जीवन से ज्ञानादि आध्यात्मिक गुण की सिद्धि एवं शुद्ध वृद्धि हो तो जीवन की रक्षा करते हुए वैसा करना चाहिए, किन्तु यदि जीवन से भी ज्ञानादि की अभीष्ट सिद्धि नहीं होती हो तो वह मरण भी साधक के लिए शिरसा श्लाघनीय है।[18]

समाधिमरण का मूल्यांकन

स्वेच्छामरण के संबंध में पहला प्रश्न यह है कि क्या मनुष्य को प्राणान्त करने का नैतिक अधिकार है? पं. सुखलाल जी ने जैन दृष्टि से इस प्रश्न का जो उत्तर दिया है उसका संक्षिप्त रूप यह है कि जैन धर्म सामान्य स्थितियों में चाहे वह लौकिक हो या धार्मिक, प्राणान्त करने का अधिकार नहीं देता है लेकिन जब देह और आध्यात्मिक सद्गुण इनमें से किसी एक की पसन्दगी करने का विषम समय आ गया हो तो देह का त्याग करके भी अपनी विशुद्ध आध्यात्मिक स्थिति को बचाया जा सकता है।[19] यदि सद्गुणों की रक्षा के निमित्त देह का विसर्जन किया जाता है तो वह अनैतिक नहीं हो सकता। नैतिकता की रक्षा के लिए किया गया देह-विसर्जन अनैतिक कैसे होगा।

समकालीन विचारकों में आदरणीय धर्मानन्द कौसम्बी और महात्मा गाँधी ने भी मनुष्य को प्राणान्त करने के अधिकार का समर्थन नैतिक दृष्टि से किया था। महात्माजी का कथन है कि जब मनुष्य पापाचार का वेग बलवत्तर हुआ देखता है और आत्महत्या के बिना अपने को पाप से नहीं बचा सकता तब होने वाले पाप से बचने के लिए उसे आत्महत्या करने का अधिकार है।[20] कौसम्बीजी ने भी अपनी पुस्तक 'पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म' में स्वेच्छामरण का समर्थन किया था और उसकी भूमिका में पं. सुखलाल जी ने 'उन्होंने अपनी स्वेच्छा-मरण की इच्छा को अभिव्यक्त किया था' यह उद्धृत किया है।[21]

काका कालेलकर स्वेच्छामरण को महत्त्वपूर्ण मानते हुए जैन परम्परा के समान ही कहते हैं कि जब तक

यह शरीर मुक्ति का साधन हो सकता है तब तक अपरिहार्य हिंसा को सहन करके भी इसे जिलाना चाहिए। जब हम यह देखें कि आत्मा के अपने विकास के प्रयत्न में शरीर बाधा रूप ही होता है तब हमें उसे छोड़ना चाहिए। जो किसी हालत में जीना चाहता है उसकी निष्ठा तो स्पष्ट है ही, लेकिन जो जीवन से ऊब कर अथवा केवल मरने के लिए मरना चाहता है, तो उसमें भी विकृत शरीर-निष्ठा है। जो मरण से डरता है और जो मरण ही चाहता है, वे दोनों जीवन का रहस्य नहीं जानते। व्यापक जीवन में जीना और मरना दोनों का अन्तर्भाव होता है, उन्मेष और निमेष दोनों क्रियाएँ मिलकर ही देखने की एक क्रिया पूरी होती है।[22]

भारतीय नैतिक चिन्तन में केवल जीवन जीने की कला पर ही नहीं वरन् उसमें जीवन की कला के साथ मरण की कला पर भी विचार किया गया है। नैतिक चिन्तन की दृष्टि से किस प्रकार जीवन जीना चाहिए यही महत्त्वपूर्ण नहीं है, वरन् किस प्रकार मरना चाहिए यह भी मूल्यवान है। मृत्यु की कला जीवन की कला से भी महत्त्वपूर्ण है, आदर्श मृत्यु ही नैतिक जीवन की कसौटी है। जीवन का जीना तो विद्यार्थी के सूत्रकालीन अध्ययन के समान है, जबकि मृत्यु परीक्षा का अवसर है। हम जीवन की कमाई का अन्तिम सौदा मृत्यु के समय करते हैं। यहाँ चूके तो फिर पछताना होता है और इसी अपेक्षा से कहा जा सकता है कि जीवन की कला की अपेक्षा मृत्यु की कला अधिक मूल्यवान है। भारतीय नैतिक चिन्तन के अनुसार मृत्यु का अवसर ऐसा अवसर है, जब हममें से अधिकांश अपने भावी जीवन का चुनाव करते हैं। गीता (18/5-6) का कथन है कि मृत्यु के समय जैसी भावना होती है वैसी ही योनि जीव प्राप्त करता है। जैन परम्परा में खन्धक मुनि की कथा यही बताती है कि जीवन भर कठोर साधना करने वाला महान् साधक जिसने अपनी प्रेरणा एवं उद्बोधन से अपने सहचारी पाँच सौ साधक शिष्यों की उपस्थित मृत्यु की विषम परिस्थिति में समत्व की साधना के द्वारा निर्वाण का अमृतपान कराया वही साधक स्वयं की मृत्यु के अवसर पर क्रोध के वशीभूत हो किस प्रकार अपने साधना-पथ से विचलित हो गया। वैदिक परम्परा में जड़भरत का कथानक भी यही बताता है कि इतने महान् साधक को भी मरण वेला में हरिण पर आसक्ति रखने के कारण पशु योनि को प्राप्त होना पड़ा। उपर्युक्त कथानक हमारे सामने मृत्यु का मूल्य उपस्थित कर देते हैं। मृत्यु इस जीवन की साधना का परीक्षा काल है। वह इस जीवन में लक्ष्योपलब्धि का अन्तिम अवसर और भावी जीवन की कामना का आरम्भ बिन्दु है। इस प्रकार वह अपने में दो जीवनों का मूल्य संजोए हुए है। मरण जीवन का अवश्यम्भावी अंग है। उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। वह जीवन का उपसंहार है, जिसे सुन्दर बनाना हमारा एक आवश्यक कर्त्तव्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्प्रति युग के प्रबद्ध विचारक भी समाधिमरण को अनैतिक नहीं मानते हैं। अतः जैन दर्शन पर लगाया जाने वाला यह आक्षेप कि वह जीवन के मूल्य को अस्वीकार करता है, उचित नहीं माना जा सकता। वस्तुतः समाधिमरण पर जो आक्षेप लगाये जाते हैं उनका संबंध समाधिमरण से न होकर आत्महत्या से है। कुछ विचारकों ने समाधिमरण और आत्महत्या के वास्तविक अन्तर को नहीं समझा और इसी आधार पर समाधिमरण को अनैतिक कहने का प्रयास किया, लेकिन जैसा कि हम पूर्व में सिद्ध कर चुके हैं, कि समाधिमरण या मृत्युवरण आत्महत्या नहीं है और इसलिए उसे अनैतिक भी नहीं कहा जा सकता। जैन आचार्यों ने स्वयं भी आत्महत्या को अनैतिक माना है, लेकिन उनके अनुसार आत्महत्या समाधिमरण से भिन्न है।

मृत्युवरण तो मृत्यु की वह कला है, जिसमें न केवल जीवन ही सार्थक होता है वरन् मरण भी सार्थक हो जाता है। आदरणीय काका कालेलकर ने खलील जिब्रान का यह वचन उद्धृत किया है कि "एक आदमी ने आत्मरक्षा के हेतु खुदकुशी की, आत्महत्या की, यह वचन सुनने में विचित्र सा लगता है।"[23] आत्महत्या से

आत्मरक्षा का क्या संबंध हो सकता है? वस्तुतः यहाँ आत्मरक्षा का अर्थ आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों का संरक्षण है और आत्महत्या का मतलब शरीर का विसर्जन। जब नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संरक्षण के लिए शारीरिक मूल्यों का विसर्जन आवश्यक हो तो उस स्थिति में देह-विसर्जन या स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण ही उचित है। आध्यात्मिक मूल्यों की रक्षा प्राणरक्षा से श्रेष्ठ है। गीता ने स्वयं अकीर्तिकर जीवन की अपेक्षा मरण को श्रेष्ठ मान कर ऐसा ही संकेत किया है।[24]

वस्तुतः समाधिमरण का यह व्रत हमारे आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों के संरक्षण के लिए ही लिया जाता है और इसलिए यह पूर्णतः नैतिक है।

संदर्भ

1. अकाममरणं चेव सकाममरणं तहा। -उत्तराध्ययन, संपादक मधुकरमुनि, प्रकाशक- श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1984, 5/2
2. बालाणं अकामं तु मरणं असइं भवे।
   पंडियाणं सकामं तु उक्कोसेण सइं भवे ।। -वही, 1984, 5/3
3. उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निष्प्रतीकारे।
   धर्माय तनुविमोचनमाहुः संल्लेखनामार्याः ।।-रत्नकरण्डश्रावकाचार, समन्तभद्र, प्रकाशक माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, मुम्बई, 1926, अध्याय 5।
4. देखिये- अंतकृतदशांग सूत्र के अर्जुनमाली के अध्याय में सुदर्शन सेठ के द्वारा किया गया सागारी संथारा।
5. देखिये-अंतकृतदशांगसूत्र, संपादक मधुकरमुनि, प्रकाशक- श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1981, वर्ग 8 अध्याय 1
6. प्रतिक्रमण सूत्र, संल्लेखना का पाठ, सम्पादक- रत्नाकर विजय जी, प्रकाशक- अजीतनाथ जैन धर्मकरण, उदयपुर, वि.सं. 2039
7. संयुक्तनिकाय, अनु. जगदीश कश्यप एवं धर्मरक्षित महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, 1954, 21/2/4/5
8. संयुक्तनिकाय, अनु.जगदीश कश्यप एवं धर्मरक्षित महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, 1954, 34/2/4/4
9. अतिमानादतिक्रोधात्स्नेहाद्वा यदि वा भयात्।
   उद्बध्नीयात्स्त्री पुमान्वा गतिरेषा विधीयते।
   पूयशोणितसम्पूर्णे अंधे तमसि मज्जति।
   षष्टि वर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते ।। -पराशरस्मृति 4/1/2
10. विशेष जानकारी के लिए देखिये- धर्मशास्त्र का इतिहास, पी.वी.काणे, पृ. 488, -अपरार्क पृ. 536
11. धर्मशास्त्र का इतिहास पृ. 487
12. धर्मशास्त्र का इतिहास पृ. 488
13. रत्नकरण्डश्रावकाचार 22
14. देखिये-
   (अ) दर्शन और चिन्तन, पं. सुखलालजी, गुजरात, विद्या सभा, अहमदाबाद, 1957, पृ. 536
   (ब) नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्- मनु उद्धृत, परमसखा मृत्यु, काका कालेलकर, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1979, पृ. 24
   (स) भवतृष्णा (जीने की तीव्र इच्छा) और विभवतृष्णा (मरने की तीव्र इच्छा) बुद्ध ने साधक को इन दोनों से बचने का निर्देश किया है।
   (द) जीवियं नाभिकंखेज्जा मरणं नावि पत्थए।
15. मरणपडियारभूया एसा एवं च ण मरणनिमित्ता जह गंडछेअकिरिआ णो आयविराहणारूपा। -उद्धृत, दर्शन और चिन्तन, पं. सुखलाल जी संघवी, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद, 1957 पृ. 536

16. श्री अमर भारती, मार्च 1965, पृ. 26
17. संजमहेउं देहो धारिज्जइ सो कओ उ तदभावे।
संजम-फाइनिमित्तं देह परिपालणा इट्ठा।। -ओघनिर्युक्ति 47
18. श्री अमर भारती, जैन संस्कृति की साधना, मार्च 1965 पृ. 26
19. दर्शन और चिन्तन, पं. सुखलाल संघवी, गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद, 1957, खण्ड 2, पृ. 533-34
20. परमसखा मृत्यु, काका कालेलकर, पृ. 26
21. पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म, भूमिका।
22. परमसखा मृत्यु, काका कालेलकर, पृ. 19
23. परमसखा मृत्यु, काका कालेलकर, पृ. 43
24. गीता 2/34

-निदेशक, प्राच्य विद्यापीठ, दुपाड़ा रोड़, शाजापुर (म.प्र.)

मैना गुरुणी प्यारा है....।

श्री धर्मचन्द जैन

(तर्जः- जीया बेकरार है......।)

मैना गुरुणी प्यारा है, संथारा स्वीकारा है।
इनकी समता और सजगता, देखो अपरम्पारा है।।
मैना गुरुणी प्यारा है.....।। टेर।।
बारह वर्ष की वय में देखो, संयम को अपनायाजी-2,
गुरु हस्ती की शिष्या बनकर, आगम ज्ञान बढ़ायाजी-2,
विनय धर्म को धारा है, भाषा ज्ञान निखारा है।
इनकी समता.....।।1।।
वर्ष इकहत्तर संयम पाला, तत्त्वज्ञान विकसायाजी-2,
प्रवचन शैली अद्‌भुत पाकर, शासन को चमकायाजी-2,
गुरु आज्ञा स्वीकारा है, संयम तेज निराला है।
इनकी समता.....।।2।।
गुरु हीरा की आज्ञा लेकर, संथारा अपनायाजी-2,
मान गुरु के आशीर्वाद से, भाव विशुद्ध बनायाजी-2,
आगम ज्ञान सहारा है, आतम का हित प्यारा है।
इनकी समता.....।।3।।
जो-जो दोष लगे जीवन में, उनसे किया किनाराजी-2,
शल्य रहित हो अन्तरमन से, मिच्छामि स्वीकाराजी-2,
क्रोध मान को टारा है, माया लोभ निवारा है।
इनकी समता.....।।4।।
जोधाणा नगरी में देखो, अद्‌भुत ठाट लगायाजी-2,
सन्त और सतियों ने मिलकर, शुद्धीकरण करायाजी-2,
सोलह दिन संथारा है, 'धर्म' ही पार उतारा है।
इनकी समता.....।।

-रजिस्ट्रार, अ.भा.श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर (राज.)

श्रद्धार्पण

शासन प्रभाविकाजी की जीवन यात्रा

श्री नौरतनमल मेहता

जोधपुर जिलान्तर्गत क्रियोद्धारक भूमि भोपालगढ़ के समीपस्थ ग्राम बारनी खुर्द जिसे गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा. "जैनपुरी" के नाम से सम्बोधित करते थे, उस यशस्वी ग्राम में दृढ़धर्मी सुश्रावक श्री रिडमलचन्दजी भण्डारी की गुरुभक्ति और संघनिष्ठा शासन-दीप्ति में ज्यातिं सदृश थी। सुश्रावक भण्डारीजी के घर-आंगन में 3 पुत्र और 6 पुत्रियों का जन्म सुश्राविका श्रीमती जतनदेवीजी की रत्नकुक्षि से हुआ। सर्वश्री रणवीरचन्दजी, देवरूपचन्दजी और महिपालचन्दजी के साथ पारसबाईजी, केशरबाईजी, सायरकंवरजी, मैनाकंवरजी, शांतिकंवरजी और लाडकंवरजी का भरापूरा भण्डारी परिवार श्रद्धानिष्ठ-धर्मनिष्ठ परिवार के रूप में रत्नसंघ और जिनशासन में विशिष्ट स्थान रखता है। बारनी खुर्द से व्यापार-व्यवसाय के लिए भण्डारी परिवार मद्रास (चेन्नई) जाकर बस गया। मद्रास (चेन्नई) महानगर में सायरकंवर-मैनाकंवर का जन्म हुआ।

शासन प्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी का जन्म संघ कार्यालय के रिकॉर्ड में वि.सं. 1991 आषाढ़ शुक्ला द्वितीया दर्ज होने से प्राय: हर व्यक्ति की जुबान पर वि.सं. 1991 जन्म वर्ष के रूप में याद आता है, परन्तु आचार्यप्रवर पूज्य गुरुदेव श्री हीराचन्द्रजी म.सा. से विदित हुआ कि जन्म कुण्डली के अनुसार आषाढ शुक्ला द्वितीया वि.संवत् 1990 सही जन्म तिथि है। सायर-मैना का संयुक्त परिवार में भौतिक सुख-सुविधा में बचपन बीता। परम्परानुसार बालिकाओं का लघुवय में विवाह कर दिया जाता था, अतः भण्डारी परिवार की तीसरी सुपुत्री सायरकंवर का बालवय में विवाह बीकानेर निवासी शिवकरणजी खजान्ची के साथ सम्पन्न हुआ। विवाहोपरान्त लघुवय में पति के स्वर्गस्थ हो जाने से नवविवाहिता सायरकंवरजी को वैधव्य का दुःख झेलना पड़ा।

अनन्य गुरुभक्त सुश्रावक श्री रिडमलचन्दजी भण्डारी एवं सुश्राविका श्रीमती जतनबाईजी ने अपनी इस पुत्री को संत-सतीवृन्द की सेवा-भक्ति में जाने के लिए प्रेरित किया। सायरजी के साथ मैनाजी भी माता-पिता के साथ सत्संग-सेवा में जाने लगी। संत-समागम के सुयोग से ज्ञान-ध्यान सीखने और त्याग-तप में पुरुषार्थ करने में उन दोनों का मन गति-प्रगति करने लगा। प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवरजी म.सा. की छत्रछाया में संस्कारित भण्डारी परिवार की दोनों बहिनों की प्रज्ञा व प्रतिभा में निखार आता गया।

अपनी बड़ी बहिन के विवाह एवं विवाहोपरान्त वैधव्य देखकर छोटी बहिन मैना ने देह की नश्वरता और जीवन की क्षणभंगुरता का आभास बचपन में पा लिया। पूर्वजन्म की पुण्यवानी, पारिवारिक संस्कार, धर्माचार्य-धर्मगुरु पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. एवं उनके आज्ञानुवर्ती संत- सतीवृन्द के सान्निध्य में रहने के सुयोग से दोनों बहिनों के अन्तर्मन में दीक्षित होने की भावना हिलोरें लेने लगीं।

सायर-मैना का परस्पर प्रेम अनूठा था। दोनों साथ रहने वाली और ज्ञान-ध्यान सीखने वाली बहिनों ने दीक्षित होने की बात परिवारजनों के समक्ष रखी। परिवारजनों ने मैना की बात को जिद्द समझा, किन्तु दृढ़ इच्छाशक्ति की धनी बालिका मैना ने कहा कि मेरी जिद्द ही सही, मैं सायर बहिन के साथ दीक्षित होऊँगी, जरूर दीक्षा लूँगी। लघुवय में दृढ़ता से अपनी बात रखना और उस पर खरा उतरना मामूली बात नहीं है। बचपन में खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, घूमने-फिरने के साथ साज-शृंगार की हठ तो देखी जा सकती है, किन्तु दीक्षा लेने की हठ को प्रारम्भ में कोई परिवारजन मानने को तैयार नहीं हुआ।

''जहाँ चाह, वहाँ राह'' की उक्ति दृढ़ संकल्प से साकार होती है। मैना अपनी बहिन सायर के साथ दीक्षित होना चाहती थी, वहीं परिवारजन उसे सांसारिक बन्धनों में बांधने की सोच रहे थे। परिवारजनों ने अपने स्तर पर बहुत समझाया, ताड़ना-तर्जना दी और दबाव बनाने के लिए यहाँ तक कह दिया कि तू यदि 'दीक्षा लूँगी' की रट लगाती रही तो तुझे कमरे में बन्द कर दिया जाएगा। घर-परिवारजनों की समझाइश पर बालिका मैना ने अपने तर्क रखे। कुछ समय तक बातचीत का दौर चलता रहा। बात बारनी के ठाकुर साहब तक भी पहुँचाई गई। ठाकुर साहब का गाँव में अपना प्रभाव होता है। बालिका ने ठाकुर साहब के समक्ष भी बात दृढ़ता से रखते कहा कि आप सब मुझे दीक्षा लेने से तो रोकना चाहते हैं, मैं दीक्षा न लेकर विवाह की बात तभी मान सकती हूँ जब ''आप मुझसे यह वादा करें कि मुझे विधवा होने का दुःख तो नहीं मिलेगा?'' परिवारजनों के साथ ठाकुर साहब ने भी हर तरह से समझाने का प्रयास किया, परन्तु पूर्वजन्म की पुण्यवानी कहो या संकल्प शक्ति का तकाजा दीक्षित होऊँगी, जरूर होऊँगी की रट में वैराग्य का पक्का रंग जमा हुआ था।

सेवा में पहुँचने पर गुरुदेव आचार्य हस्ती ने भण्डारी परिवार से कहा- ''आप परिवारजन जब तक संयम के मर्म को नहीं जान पाऐंगे, तब तक बातों का अन्त होने वाला नहीं है। ये दोनों बहिनें जब संयम-साधना की ओर बढ़ना चाहती हैं तो परिवारजन इनका सहयोग करें, बाधा उपस्थित नहीं करें।'' अन्त में परिवार को दीक्षा की बात माननी पड़ी एवं वि.सं. 2003 की माघ शुक्ला त्रयोदशी को बारनी में सायर-मैना की दीक्षा हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुई।

प्रतिपल स्मरणीय आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से और साध्वीप्रमुखा प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवरजी म.सा. के सान्निध्य में भण्डारी कुल की दो कुल- चन्द्रिकाओं की दीक्षा से बारनी में ही नहीं, पूरे मारवाड़ में हर्ष छा गया। नवदीक्षिता साध्वी श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. ने गुरुणीजी महाराज के श्रीचरणों में पाँच समिति-तीन गुप्ति का अभ्यास तो किया ही, प्रज्ञा व प्रतिभा की धनी महासतीजी ने हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत और आगम-शास्त्रों का ज्ञान भी किया। दूरदर्शी महापुरुष आचार्य भगवन्त ने ज्ञानाराधन हेतु पण्डितों की व्यवस्था के लिए संघ-सदस्यों को प्रेरित किया, परिणाम-स्वरूप सुयोग्य पण्डित की व्यवस्था के कारण महासती जी ने आगमों का, बोल थोकड़ों का, साधु समाचारी का गहन ज्ञान अर्जित कर लिया। ज्ञान के साथ प्रवचन की कला से महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. की गणना प्रभावशाली सतियों में की जाने लगी। ज्ञान-क्रिया सम्पन्न, ओज-तेज की धनी, प्रवचन कला में निष्णात, बाल ब्रह्मचारिणी महासतीजी को आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज ने 'शासन प्रभाविका' पद से विभूषित कर महासतीजी को आगे बढ़ाने का और बढ़ने का सुअवसर प्रदान किया।

महासती श्री मैनासुन्दरीजी महाराज के राजस्थान के बड़े कस्बो-नगरों और महानगरों में यशस्वी वर्षावास हुए तो राजस्थान के बाहर महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश जैसे प्रदेशों में भी ऐतिहासिक चातुर्मास हुए।

वि.सं. 2058 में शासन प्रभाविका जी महाराज का जोधपुर पदार्पण हुआ। महासती श्री चन्द्रकलाजी महाराज की दुर्घटना के पश्चात् शारीरिक दृष्टि से विहार की स्थिति न होने के कारण तथा स्वयं के अधिक लम्बे विहार नहीं करने की परिस्थिति में आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्रजी म.सा. ने जोधपुर विराजने की आज्ञा प्रदान की, परन्तु जोधपुर महानगर के हर क्षेत्र को संभालने की भावना से साध्वीप्रमुखा जी महाराज ने प्रायः सभी क्षेत्र सिंचित किए। अवस्था, स्वास्थ्य में निरन्तर अनुकूलता-प्रतिकूलता, श्रमणोचित औषधोपचार की सुविधा एवं विचरण-विहार की स्थिति नहीं होने की वजह से आचार्यप्रवर पूज्य गुरुदेव श्री हीराचन्द्रजी म.सा. ने सकारण पावटा स्थित

सामायिक-स्वाध्याय भवन विराजने की अनुज्ञा प्रदान की। दृढ़ मनोबल के कारण साध्वीप्रमुखा-शासनप्रभाविकाजी महाराज ने मधुमेह की वृद्धि होते हुए भी प्रवचनादि दैनिक कार्यक्रम की निरन्तरता तो बनाए रखी ही, स्व-पर ज्ञान-ध्यानवृद्धि का भी पूरा उपयोग रखा। वृद्धावस्था में साध्वीप्रमुखाजी म.सा. ने आगम-शास्त्रों का वाचन किया और चातुर्मास के अन्त तक प्रवचन-सभा में पधारकर प्रवचन करना जिनवाणी के प्रति उनकी अटूट आस्था का अनुपम उदाहरण है।

इस वर्ष चातुर्मास पश्चात् प्राय: आहार की रुचि नहीं रहने से तन की कमजोरी बढ़ती गई। सतियों की भावना रखने के लिए कभी ग्रास लिया भी तो वमन के माध्यम से वापस निकल जाता। पेय पदार्थ भी नहीं टिकता। आहार-पानी नहीं लेने से उठने-बैठने एवं बोलने तक की ताकत भी एक तरह से नहींवत् हो गई।

सूर्यनगरी के सुज्ञ श्रावकों द्वारा साध्वीप्रमुखाजी महाराज के स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार प्राय: संघनायक के श्रीचरणों में पहुँचते रहे। आचार्यप्रवर पूज्य गुरुदेव ने स्मरण-भजन और जप-तप के साथ समय-समय पर प्रत्याख्यान करवाते रहने का सहयोगी सतियों को निर्देश किया। अन्न की रुचि नहीं बनने के कारण स्वास्थ्य में निरन्तर गिरावट व कमजोरी का आभास होने लगा। महासती मण्डल द्वारा पुन: पुन: पृच्छा पर साध्वीप्रमुखाजी महाराज का संथारे के साथ समाधि-मरण का संकेत मिलता रहा। संघ पदाधिकारियों ने वस्तुस्थिति की जानकारी पूज्य गुरुदेव तक स्पष्ट कर दी। साध्वीप्रमुखा-शासनप्रभाविकाजी महाराज की भावनानुसार एवं चिकित्सकों के साथ अनुभवी श्रावकों का अभिमत जान-देखकर आचार्यश्री ने संथारा करवाने सम्बन्धी उचित निर्णय करने की बात कहलवाई।

साध्वीप्रमुखा-शासनप्रभाविका महासतीजी ने आचार्य भगवन्त पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज का आदर्श संथारा देखा और तदन्तर संत-सतीवृन्द के संथारों के साथ पंडित-मरण की उज्ज्वल-विमल-धवल परम्परा की वे स्वयं साक्षी रही और मृत्यु को महोत्सव बनाने की भावना उनके अन्तर्मन में बनी रही। साध्वीप्रमुखाजी महाराज की भावना जान-समझकर चतुर्विध संघ की साक्षी से 21 नवम्बर 2016 को लगभग 4.00 बजे पूर्ण सजगता में श्रद्धेय श्री मनीषमुनिजी महाराज ने तिविहार संथारे के प्रत्याख्यान करवाए।

साध्वीप्रमुखाजी महाराज ने संथारा स्वीकार किया है, यह समाचार विद्युत वेग की भांति यत्र-तत्र-सर्वत्र पहुँचते ही समीपवर्ती-सुदूरवर्ती क्षेत्रों के श्रद्धालुओं के साथ आसपास के क्षेत्रों से रत्नसंघीय संत-मुनिराजों व महासती मण्डलों के विहार जोधपुर की ओर होने लगे। उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा. आदि संत-मुनिराजों का भी यथासमय पावटा क्षेत्र में पदार्पण हो गया।

उपाध्यायप्रवर प्रभृति संत-सतीवृन्द ने महाव्रतों में लगे दोषों की आलोचना सुनाने के साथ आत्मरमण-आत्मचिंतन में शास्त्र-स्वाध्याय का सम्बल प्रदान किया तो श्रावक-श्राविकाओं ने दर्शन-वन्दन के साथ नमस्कार महामंत्र का जाप और वैराग्यपोषक भजन-गीतों का सतत सहयोग बनाए रखा। संथारा स्वीकार करने के साथ साध्वीप्रमुखाजी महाराज की जागरूकता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। साध्वीप्रमुखाजी महाराज का आदर्श संथारा चल रहा था तब श्रमणसंघीय, ज्ञानगच्छीय, समर्थगच्छीय सहित आचार्य श्री रामलालजी महाराज की परम्परा के संत-सतीवृन्द का संथारालीन साध्वीप्रमुखाजी महाराज की सुख-शांति पृच्छा एवं दर्शन के निमित्त आवागमन बना रहा।

साध्वीप्रमुखा-शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. का आदर्श संथारा पूरे मनोयोग से, दृढ़ इच्छा शक्ति से एवं भावनापूर्वक आगे बढ़ता रहा। संथारे के साथ समाधि-मरण की प्रशस्त भावना और सजगता के साथ आत्मचिंतन- आत्मरमण में लीन रहते हुए साध्वीप्रमुखा ने मृत्यु को महोत्सव बनाया, जो अभिनन्दनीय है।

साध्वीप्रमुखाजी म.सा. ने चौविहार संथारा करके समत्वभावों में 6 दिसम्बर 2016 को दोपहर पश्चात्

करीब 4.30 बजे नश्वर देह का त्याग किया। दिनाँक 07 दिसम्बर 2016 को साध्वीप्रमुखाजी महाराज के पार्थिव देह का अंतिम संस्कार ओसवाल स्वर्गाश्रम में जय-जयकारों के गगनभेदी जयनादों के साथ सम्पन्न हुआ। अन्तिम यात्रा में जोधपुर सहित आसपास के हजारों श्रद्धालु सम्मिलित हुए। साध्वीप्रमुखाजी म.सा. का आदर्श संथारा रत्नसंघ की गौरवशाली परम्परा में नए अध्याय के रूप में सदा-सर्वदा याद किया जाएगा।

-सह-सम्पादक, जिनवाणी मासिक पत्रिका, जोधपुर (राज.)

गुरुणी सा हमारी, जिनशासन चमकाये

श्री वीरेन्द्रकुमार जामड़

(तर्जः- गुण सौरभ से रहे महकता......।)

गुरुणी सा हमारी बहुत है ज्ञानी, ज्ञान की गंगा बहाये, जिनशासन चमकाये।
तीजा मनोरथ ले ''संथारा'' संयम को श्रेष्ठ बनाये, जिनशासन चमकाये।।

नाम आपका 'मैना' सुन्दरी, यथा नाम गुण पाये,
मीठी वाणी मैना जैसी, सुन्दरतम मन पाये,
'हस्ती' जैसा गुरुवर पाकर, जीवन सफल बनाये।
जिनशासन.....।।1।।

माता आपकी जतनीदेवी, देखो कैसा जतन किया है,
पिता आपके रिडमलचन्दसा, शासन को युगल दिया है,
चेन्नई शहर में जन्म लिया, बारणी में संयम पाये।
जिनशासन.....।।2।।

लग गया वैराग्य का चसखा, बस ज्ञान सुधा रस पीना,
संसार असार मानकर सीखा, कैसे जग में जीना,
बड़ी बहन सायरकंवर के साथ में संयम पाये।
जिनशासन.....।।3।।

मदनकँवरजी गुरुणी आपकी कैसा सृजन किया है,
निर्देश गुरु का पाकर आगम का ज्ञान दिया है,
आज्ञानुवर्ती हीरा की बनकर, ज्ञान प्रकाश फैलाये।
जिनशासन.....।।4।।

गुरु ने देखी क्षमा आपकी, क्षमता का मान बढ़ाया,
'शासन प्रभाविका' पद देकर, सब का मन हर्षाया,
वाणी आपकी रस से भरी है, जन-जन के मन को भाये।
जिनशासन.....।।5।।

तेज, रतन, सुशीला, सौभाग्य, मनोहर कौशल्याजी,
सोहन, सरलेश, चन्द्र, इन्दू, विमला, शान्ति, ज्ञानलताजी,
वरद हस्त है सब सतियों पर, 'वीरेन्द्र' शीश नमाये।
जिनशासन.....।।6।।

-5/179, मालवीय नगर, जयपुर (राज.)

श्रद्धार्पण

'श्रमणी तीर्थ' का गौरव बढ़ाया

डॉ. दिलीप धींग

दिसम्बर, 2010 की घटना है। मैं उस समय आचार्य श्री हस्ती प्रणीत 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' के चारों भागों का संक्षेपीकरण-संपादन करने में संलग्न था। इनके मुद्रण कार्य के सिलसिले में मेरा जोधपुर रहना हुआ। तब मैंने साध्वीप्रमुखाजी के दर्शन किये और उनका प्रवचन भी सुना। लगभग आधे-पौन घण्टे का वह प्रवचन ऐसा था, मानो किसी सुरम्य ढलान से स्वच्छ जल का झरना बह रहा हो। बिना स्वाध्याय और साधना के ऐसा प्रवाहबद्ध प्रवचन संभव नहीं हो पाता है। उनके प्रवचन में आद्योपान्त साधना से उपजी ऊर्जा का अहसास हुआ। अच्छे वक्ताओं के विचारों को कलमबद्ध किया जा सकता है, किया जाता है; लेकिन उनकी शैली और वैचारिक ऊर्जा को कैद कर पाना पूरी तरह से संभव नहीं होता है।

मैंने उनका प्रवचन या प्रवचनांश कलमबद्ध तो नहीं किया, लेकिन उसकी विषयवस्तु यह थी कि मन लगाने से लगता है। अच्छे कार्यों और पारमार्थिक उद्देश्यों के लिए मन लगाने का प्रयत्न करना चाहिये। उन्होंने स्थानकवासी जैन परम्परा के ज्ञानगच्छ में दीक्षित एक दम्पती (नाम मुझे याद नहीं रहा) का उदाहरण दिया कि किस प्रकार पति-पत्नी एक-दूसरे का सहयोग करते हुए संयम-पथ पर आगे बढ़े। यह उदाहरण जीवन्त भी था और उनके सम्प्रदायमुक्त चित्त का प्रमाण भी। प्रायः सन्तों के प्रवचनों में दूरस्थ, अनजाने और पराये उदाहरण तो मिल जाते हैं, लेकिन निकटवर्ती और अपनों के प्रेरक प्रसंग जाने-अनजाने उपेक्षित हो जाते हैं या कर दिये जाते हैं।

साध्वीप्रमुखाजी की अभिव्यक्ति में सहज सौहार्द था। यह उनके प्रवचन का हार्द भी था। उनके प्रवचन की अन्य विशेषताएँ थीं - कुशलता से निर्दिष्ट विषय का प्रतिपादन, प्रसाद गुण, समयबद्धता, आगमसम्मतता आदि। एक साधारण प्रतीत होने वाले विषय को उन्होंने ऊँचाई दी और उसकी महत्ता स्थापित की। प्रवचनोपरान्त मैंने उनके श्रेष्ठ व्याख्यान की प्रशंसा की तो उन्होंने अत्यन्त श्रद्धापूर्ण शब्दों में सारा श्रेय आचार्य श्री हस्ती को दिया। उन्होंने कहा कि जो कुछ श्रेष्ठ है, वह सब पूज्य गुरुदेव (आचार्य श्री हस्ती) की असीम कृपा के फलस्वरूप है।

साध्वीप्रमुखाजी की मंगल प्रेरणा से दीक्षित महासतियाँ ज्ञान-ध्यान में आगे बढ़ीं, बढ़ रही हैं तथा धर्म की प्रशंसनीय प्रभावना कर रही हैं। इसमें श्रेष्ठ संघीय अनुशासन, सुदृढ़ शिक्षण व्यवस्था, आचार्यप्रवर, उपाध्यायप्रवर आदि के मंगल आशीष के साथ ही साध्वीप्रमुखाजी का योगदान भी है।

'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' में आचार्य श्री हस्ती की यह व्यथा अंकित है कि जैन इतिहास में श्रमणियों के योगदान को कम सुरक्षित रखा गया। इतिहास मार्तण्ड आचार्यश्री ने उनके समय में इस ऐतिहासिक अभाव को दूर करने का सफल प्रयास किया तथा इस दिशा में सबको प्रेरणा दी।

यह शुभ है कि वर्तमान में साध्वियों के योगदान को भी परखा और मूल्यांकित किया जा रहा है। उसका प्रचुर लाभ संघ, समाज को मिल रहा है। जिनशासन की दिग् दिगन्त प्रभावना हो रही है। वस्तुतः चारों ही तीर्थ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) परस्पर पूरक और एक-दूसरे के सहयोगी हैं। समय-समय पर सबका यथेष्ट मूल्यांकन होना चाहिये। जिनशासन प्रभाविका साध्वीप्रमुखाजी के साधनामय जीवन और समाधिमय देह-विसर्जन से अनुप्रेरित होकर हमें चारों ही जीवन्त तीर्थों को हर स्तर पर सचमुच तीर्थ जैसा पावन/प्रभावी बनाने का पुरुषार्थ करना चाहिये।

-निदेशक : अंतरराष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन व शोध केन्द्र
सुगन हाउस, 18, रामानुजा अय्यर स्ट्रीट, साहुकारपेट, चेन्नई-600079 (तमिलनाडु)

श्री महावीराय नमः

जय गुरु हीरा श्री कुशलरत्नगजेन्द्रगणिभ्यो नमः जय गुरु मान

जैन भागवती दीक्षा-महोत्सव

आदरणीय धर्मप्रेमी बन्धुवर,

सादर जय जिनेन्द्र !

आपको सूचित करते हुए परम प्रसन्नता है कि आगमज्ञ, प्रवचन-प्रभाकर, व्यसन मुक्ति के प्रबल प्रेरक, जिनशासनगौरव परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री 1008 श्री हीराचन्द्रजी म.सा. की आज्ञा से, आत्मार्थी, शान्त-दान्त-गम्भीर, प्रबल पुरुषार्थी परमश्रद्धेय उपाध्यायप्रवर पं. रत्न श्री मानचन्द्रजी म.सा. की मंगल मनीषा से एवं साध्वीप्रमुखा विदुषी महासती श्री तेजकंवर जी म.सा. की शुभाकांक्षा से माघ शुक्ला दशमी, सोमवार, 06 फरवरी, 2017 को जलगाँव (महा.) में तथा माघ शुक्ला त्रयोदशी, गुरुवार, 09 फरवरी, 2017 को पीपाड़ शहर में निम्नांकित मुमुक्षु बहिनों एवं मुमुक्षु भाइयों की जैन भागवती दीक्षाएँ सम्पन्न होने जा रही हैं-

06 फरवरी, 2017 को जलगाँव (महा.) में

मुमुक्षु बहिन सुश्री हिमांशी जी कांकरिया , नागौर

की भागवती दीक्षा

परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबाला जी म.सा. के मुखारविन्द से सम्पन्न होगी।

09 फरवरी, 2017 को पीपाड़शहर (राज.) में

(1) मुमुक्षु बन्धु श्री कल्पेश जी कवाड़, चेन्नई

(2) मुमुक्षु बहिन सुश्री मधुबाला जी कवाड़, चेन्नई

की भागवती दीक्षा

परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के मुखारविन्द से तथा महान् अध्यवसायी सरस व्याख्यानी श्रद्धेय श्री महेन्द्रमुनि जी म.सा. आदि ठाणा एवं व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलता जी म.सा., व्याख्यात्री महासती श्री चारित्रलता जी म.सा. आदि ठाणा के पावन सान्निध्य में सम्पन्न होगी।

दीक्षा महोत्सव पर आप व्रत-नियमयुक्त श्रद्धा समर्पित कर
दीक्षा की अनुमोदना का लाभ प्राप्त करें।

विनीत

पी. शिखरमल सुराणा
अध्यक्ष

पूरणराज अबानी
महामंत्री

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ

मुमुक्षु बहिन सुश्री हिमांशीजी कांकरिया

जन्म तिथि : 24 मई 1996

जन्म स्थान : नागौर (राजस्थान)

शिक्षण : सीनियर सैकण्डरी

पारिवारिक परिचय

पड़दादा-दादी - स्व. श्री सम्पतराजजी-स्व. श्रीमती पानीबाईजी कांकरिया

दादा-दादी - स्व. श्री भीखमचन्दजी-स्व.श्रीमती मोहनीदेवीजी, श्री केवलचन्द जी- स्व. कान्तादेवीजी कांकरिया

पिता-माता - श्री भंवरलालजी- विमलादेवीजी कांकरिया

चाचा-चाची - श्री गौतमचन्दजी-कुसुमदेवीजी कांकरिया, श्री सुनीलकुमारजी-नीलमदेवीजी कांकरिया, श्री प्रेमचन्दजी-मधुजी कांकरिया, श्री राजेशकुमारजी-संगीतादेवीजी कांकरिया, श्री अशोककुमारजी-अन्नूदेवीजी कांकरिया

भाई-भाभी - श्री मनोजकुमारजी-अंजलीदेवीजी कांकरिया, श्री विनोदकुमारजी-सुनितादेवीजी कांकरिया, श्री पीयूषकुमारजी-प्रतिभादेवीजी कांकरिया, श्री विजयजी, दीपकजी, धीरजजी, सिद्धार्थ जी कांकरिया

भुआ-फूंफासा - श्रीमती ज्ञानादेवीजी-प्रकाशचन्दजी सुराणा, श्रीमती कंचनदेवीजी-सुन्दरलालजी बोथरा, श्रीमती पुष्पादेवीजी-शांतिलालजी बांगाणी, श्रीमती विमलादेवीजी-स्व. श्री शांतिलालजी भण्डारी, श्रीमती किरणदेवीजी-सुभाषचन्दजी समदड़िया, श्रीमती संतोषदेवीजी-स्व. श्री प्रेमचन्दजी कांठेड, श्रीमती मंजूदेवीजी-जेठमलजी बांठिया, श्रीमती रंजनदेवीजी-पारसमलजी कवाड़, श्रीमती शांतिदेवीजी-जितेन्द्रजी बोथरा , श्रीमती किरणदेवीजी-आशकरणजी फूलफगर, श्रीमती तारा देवीजी-उत्तमचन्दजी श्रीश्रीमाल, श्रीमती ऋद्धिदेवीजी- निर्मलकुमारजी कोठारी।

नाना-नानी - स्व. श्री रतनलालजी-स्व. चंचलदेवीजी बोथरा, स्व. श्री राधप्पाजी-सुमित्रादेवीजी

मामा-मामी - श्री महावीरचन्दजी-स्व. कंचनदेवीजी बोथरा, स्व. श्री भरतकुमारजी-नवरतनदेवीजी बोथरा, श्री बिजेन्द्रकुमारजी-सुशीलादेवीजी बोथरा, श्री कमलकुमारजी-पुष्पादेवीजी, श्री अशोककुमारजी-सालिकादेवीजी।

मासी-मासोसा - श्रीमती कुसुमबाईजी-कान्तिलालजी मूथा, श्रीमती मंजूदेवीजी-पदमचन्दजी बेताला, स्व. उर्मिलादेवीजी-मिलापचन्दजी सुराणा, श्रीमती राजकुमारीजी-अजीतराजजी खिंवसरा

बहन-बहनोई - श्रीमती अनितादेवीजी-कमलचन्दजी दुग्गड़, श्रीमती सुनितादेवीजी-विमलचन्दजी कवाड़, श्रीमती मोनिकादेवीजी-मुकेशकुमारजी बाघमार, श्रीमती निधिदेवीजी- हर्षकुमारजी बरड़िया, निकीता कांकरिया

भतीजा-भतीजी - मनस्वी, देवांशी, अरिहंत, वंशिका, नमित, रशिका, मयंक कांकरिया

भाणजा-भाणजी - पीयूष, चांदनी दुग्गड़, मेघना, उत्सवजी ओस्तवाल, दीपशिखा, जाह्नवी, चंचरीक कवाड़, याशिका, कशीश बाघमार

धार्मिक अध्ययन

आगम वाचनी - आचारांग प्रथम श्रुतस्कंध, अंतगड़ सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र

आगम कण्ठस्थ - दशवैकालिक सूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र 1 से 10, 18, 28, वीर स्तुति, सुखविपाक सूत्र, नंदीसूत्र, उववाई-22 गाथा,

स्तोत्र - भक्तामर, हीराष्टक, हस्ती-हीरा-मान चालीसा आदि।

थोकड़े कंठस्थ - 25 बोल, 67 बोल, 800, 50, 47 बोल की बंधी, 14 गुणस्थान, 102 बोल, 98 बोल, 32 बोल बासठिया, कायस्थिति, योनि, संज्ञा, उपयोग, कर्म-प्रकृति, समिति-गुप्ति, गति-आगति, विरह, नवतत्त्व, श्वासोच्छ्वास, लघुदण्डक, रूपी-अरूपी, पांच-देव, जयंति बाई के प्रश्नोत्तर, सुपच्चखाण-दुपच्चक्खाण, जीव-पज्जवा, अजीव पज्जवा, कर्मग्रंथ-1,2,3, श्रमण-निर्ग्रंथ

भाषा ज्ञान - हिन्दी, अंग्रेजी, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी

धार्मिक परीक्षा - आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड -1 से 5 वैराग्यावधि - 1 वर्ष

जलगांव दीक्षा-महोत्सव-कार्यक्रम

वि. सं. 2073 माघ शुक्ला नवमी, रविवार, 05 फरवरी, 2017

शोभा यात्रा

प्रात: 08.30 बजे सागर भवन, भवानी पेठ से प्रारम्भ होकर रतनलाल सी. बाफणा स्वाध्याय भवन, व्यंकटेश मंदिर के पीछे, गणपति नगर में व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबालाजी म.सा. के श्रीचरणों में पहुँचेगी तथा मांगलिक श्रवण किया जाएगा।

अभिनन्दन-समारोह

वीर परिवार एवं दीक्षार्थियों का

समय : अपराह्न 2.00 बजे

स्थान : रतनलाल सी. बाफणा स्वाध्याय भवन, व्यंकटेश मंदिर के पीछे, गणपति नगर, जलगांव-425001 (महा.)

- विशिष्ट अतिथि
  - संघ सेवा शिरोमणि माननीय श्री मोफतराजजी मुणोत, मुम्बई
    संयोजक - संघ संरक्षक-मण्डल
  - माननीय श्री पी. शिखरमलजी सुराणा-चेन्नई
    राष्ट्रीय अध्यक्ष - अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर
  - माननीय श्री पारसचन्दजी हीरावत
    अध्यक्ष - सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

वि. सं. 2073 माघ शुक्ला दशमी, सोमवार,06 फरवरी, 2017

अभिनिष्क्रमण यात्रा

प्रात: 08.30 बजे वीर परिवार के अस्थायी निवास स्थान से प्रस्थान कर दीक्षा स्थल पर पहुँचेगी, जहाँ व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबालाजी म.सा. एवं व्याख्यात्री महासती श्री सुमतिप्रभाजी म.सा. आदि सतीमण्डल के पावन सान्निध्य में दीक्षा-महोत्सव कार्यक्रम प्रारम्भ होगा।

दीक्षा विधि शुभारम्भ

प्रात: 11.30 बजे लगभग व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबालाजी म.सा. के मुखारविन्द से

दीक्षा-आयोजन समिति

महेन्द्र कटारिया-नागपुर	धर्मेश चौपड़ा-बालोतरा	कंवरलाल संघवी	महावीरचंद बोथरा
उपाध्यक्ष-09422459676	मंत्री- 09414108191	098220-92962	098231-15093

अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ

संयोजक-दीक्षा समिति, जलगाँव

स्वागत समिति जलगाँव श्री सुरेशदादा जैन, श्री ईश्वरलाल ललवाणी, श्री रमेशदादा जैन, श्री अशोककुमार जैन, श्री रतनलाल सी. बाफणा

वीर परिवार

जलगांव अस्थायी पता	स्थायी पता	सम्पर्क-सूत्र
नयनतारा गेस्ट हाऊस, मोहाड़ी रोड, जलगांव-425001 (महा.), फोन-2263489	भंवरलाल मनोज कुमार कांकरिया गणेश चौक, नागौर (राज.)	मनोज कुमार 94609-54401, 81188-50814 विनोद कुमार 93752-51052, 99741-36002

मुमुक्षु बन्धु श्री कल्पेशजी कवाड़

जन्म तिथि-15 फरवरी, 1989 • जन्म स्थान- कडलूर (चेन्नई)
मूल निवासी - पीपाड़ शहर, हाल-मुकाम -चेन्नई
शिक्षण- बी. कॉम, एल.एल.बी. (प्रथम वर्ष)

पारिवारिक परिचय

पड़दादा-दादी - स्व. श्री पृथ्वीराजजी-स्व. श्रीमती सुन्दरबाईजी कवाड़

दादा-दादी - श्री दलीचन्दजी कवाड़- श्रीमती अमरावबाईजी कवाड़

छोटे दादा-दादी - स्व. श्री मांगीलालजी -श्रीमती चंचलबाईजी कवाड़, श्री प्रेमचन्दजी-श्रीमती ललिताबाईजी कवाड़

बड़े पिता-माता - श्री सुरेशचन्दजी-श्रीमती मीनाबाईजी कवाड़, श्री रविन्द्रकुमारजी-श्रीमती सिरदारबाईजी कवाड़
श्री नवरतनकुमारजी- श्रीमती वसन्ताबाईजी कवाड़

वीर पिता-माता - श्री अशोककुमारजी-श्रीमती उषाबाईजी कवाड़

चाचा-चाची - श्री हरीशकुमारजी-श्रीमती प्रभाबाईजी कवाड़

भाई-भाभी - श्री धीरजकुमारजी-श्रीमती गुणवन्तीबाईजी कवाड़, श्री प्रमोदकुमारजी-श्रीमती आरतीबाईजी कवाड़,
श्री मनोजकुमारजी-श्रीमती अनिताबाईजी कवाड़, श्री प्रवीणकुमारजी-श्रीमती मनीषाबाईजी कवाड़, श्री पवनकुमारजी-श्रीमती रिश्तीबाईजी कवाड़

भतीजा-भतीजी - यश, प्रीयल, हर्षिल, भव्या, विदान्त, कर्तव, परम

भुआसा-फूफासा - श्री विजयकुमारजी मेहता-श्रीमती मंजुबाईजी मेहता, श्री रमेशकुमारजी चौधरी-श्रीमती संतोषबाईजी चौधरी, श्री विनोदकुमारजी सिंघवी-श्रीमती कलाबाईजी सिंघवी, श्री किशोरचन्दजी लुंकड़-श्रीमती रेखाबाईजी लुंकड़, श्री पवनकुमारजी कोठारी-श्रीमती पिंकीबाईजी कोठारी, श्री सन्दीपकुमारजी कोठारी-श्रीमती चन्दनबालाजी कोठारी, श्री समरजीतजी कोठारी-श्रीमती नीतूजी कोठारी, मुमुक्षु सुश्री मधुबालाजी कवाड़

बहन-बहनोई - श्रीमती कल्पनाबाईजी-श्री चन्द्रप्रकाशजी सिंघवी, श्रीमती आरतीबाईजी-श्री पंकजजी बेताला
- श्रीमती विनीताबाईजी-श्री अभिषेकजी बोहरा, श्रीमती शीतलबाईजी-श्री हेमन्तजी आबड़
- दक्षा कवाड़, दर्शना कवाड़

नाना-नानी - श्री पानमलजी-श्रीमती राजकुमारजी दुगड़

मामा-मामी - श्री अशोककुमारजी-श्रीमती इन्द्राबाईजी दुगड़, श्री राजेशकुमारजी-प्रेमाबाईजी दुगड़

मासी-मासोसा - श्रीमती निर्मलाबाईजी-श्री प्रकाशचन्दजी नाहार, श्रीमती शिल्पाबाईजी-श्री सुनीलजी नाहर

धार्मिक अध्ययन

आगम कण्ठस्थ - आचारांग सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, नन्दी सूत्र, सुखविपाक सूत्र, अणुत्तरोववाई सूत्र, आवश्यक सूत्र, वीरत्थुई, उववाई की गाथाएँ, वृहत्कल्पसूत्र अपूर्ण

सूत्र वाचनी - उपासकदशांग सूत्र, अंतगडदशांग सूत्र, तीन छेद सूत्र

स्तोक कंठस्थ - 25 बोल, 67 बोल, लघुदण्डक, गति-आगति, तैंतीस बोल, गुणस्थान स्वरूप, 5 समिति 3 गुप्ति, ज्ञान लब्धि, कर्मग्रन्थ 1 से 3 आदि 25 थोकड़े।

स्तोत्र कंठस्थ - भक्तामर, कल्याणमंदिर, रत्नाकर पंचविंशति, महावीराष्टक, हीराष्टक, तत्त्वार्थ सूत्र 5 अध्ययन

भाषा ज्ञान - हिन्दी, अंग्रेजी, तमिल, गुजराती, प्राकृत एवं संस्कृत भाग-1

धार्मिक परीक्षा - ज्ञानार्थी 1-2, स्तोक वारिधि-2, जैन धर्म कोविद-2

वैराग्यावधि - 5 वर्ष

मुमुक्षु बहिन सुश्री मधुबालाजी कवाड़

जन्म तिथि-31 जुलाई 1990 ● जन्म स्थान- चेन्नई

मूल निवासी - पीपाड़ शहर, हाल-मुकाम -चेन्नई

शिक्षण- बी.बी.एम., एम.ए.-जैनोलॉजी

पारिवारिक परिचय

दादा-दादी	-	स्व. श्री पृथ्वीराजजी-स्व. श्रीमती सुन्दरबाईजी कवाड़
बड़े पिता-माता	-	श्री दलीचन्दजी-श्रीमती अमरावबाईजी कवाड़, स्व. श्री मांगीलालजी -श्रीमती चंचलबाईजी कवाड़
वीर पिता-माता	-	श्री प्रेमचन्दजी-श्रीमती ललिताबाईजी कवाड़
भाई-भाभी	-	श्री सुरेशचन्दजी-मीनाबाईजी कवाड़, श्री रविन्द्रकुमारजी-सिरदारबाईजी कवाड़, श्री नवरतनकुमारजी-बसन्ताबाईजी कवाड़, श्री अशोककुमारजी-उषाबाईजी कवाड़, श्री हरीशकुमारजी-प्रभाबाईजी कवाड़
बहन-बहनोई	-	श्री विजयकुमारजी मेहता-मंजुबाईजी मेहता, श्री रमेशकुमारजी चौधरी-श्रीमती संतोषबाईजी चौधरी, श्री विनोदकुमारजी सिंघवी-श्रीमती कलाबाईजी सिंघवी, श्री किशोरचन्दजी लुंकड़-श्रीमती रेखाबाईजी लुंकड़, श्री पवनकुमारजी कोठारी-श्रीमती पिंकीबाईजी कोठारी, श्री सन्दीपकुमारजी कोठारी-श्रीमती चन्दनबालाजी कोठारी, श्री समरजीतजी कोठारी-श्रीमती नीतूजी कोठारी
भुआसा-फूफासा	-	श्रीमती बसन्ताबाईजी-स्व.श्री सुगनचन्दजी भुरट, स्व. श्रीमती खुशीबाईजी-स्व. श्री सुदर्शनमलजी सुराणा, श्रीमती इचरजबाईजी-महावीरचन्दजी श्रीश्रीमाल, श्रीमती कौशल्याबाईजी-रंगरूपमल जी चोरडिया
भतीजा-	-	श्री धीरजकुमारजी-श्रीमती गुणवन्तीबाईजी कवाड़, श्री प्रमोदकुमारजी-श्रीमती आरतीबाईजी कवाड़, श्री मनोजकुमारजी-श्रीमती अनिताबाईजी कवाड़, श्री प्रवीणकुमारजी-श्रीमती मनीषाबाईजी कवाड़, श्री पवनकुमारजी-श्रीमती रिश्तीबाईजी कवाड़, मुमुक्षु श्री कल्पेशजी कवाड़, श्री यशकुमारजी कवाड़
भतीजी	-	श्रीमती कल्पनाबाईजी-श्री चन्द्रप्रकाशजी सिंघवी, श्रीमती आरतीबाईजी-श्री पंकजजी बेताला
	-	श्रीमती विनीताबाईजी-श्री अभिषेकजी बोहरा, श्रीमती शीतलबाईजी-श्री हेमन्तजी आबड़
	-	दक्षा कवाड़, दर्शना कवाड़
नाना-नानी	-	स्व. श्री सौमणमलजी-स्व. श्री बिदामबाईजी श्रीश्रीमाल
मामा-मामी	-	श्री महावीरचन्दजी-श्रीमती सरदारबाईजी श्रीश्रीमाल, श्री मानकचन्दजी-श्रीमती लीलाबाईजी श्रीश्रीमाल, श्री अशोककुमारजी-श्रीमती चंचलबाईजी श्रीश्रीमाल
मासी-मासोसा	-	श्रीमती निर्मलाबाईजी-श्री विमलचन्दजी मूथा, श्रीमती गुणबालाजी-श्री प्रकाशचन्दजी मरलेचा, श्रीमती प्रेमाबाईजी-श्री शांतिलालजी सिंघवी, स्व. श्रीमती दमयंतीजी- श्री चैनराजजी पटवा, श्रीमती संतोषबाईजी-श्री अशोकचन्दजी कोठारी, श्रीमती यशोदाबाईजी-स्व.श्री तेजन्दरजी गोलेचा

धार्मिक अध्ययन

आगम कण्ठस्थ	-	उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, नन्दी सूत्र, सुखविपाक सूत्र, अणुत्तरोववाई सूत्र, आवश्यक सूत्र, बृहत्कल्प सूत्र, वीरत्थुई, उववाई की गाथाएँ
सूत्र वाचनी	-	उपासकदशांग सूत्र, अंतगडदशांग सूत्र, तीन छेद सूत्र
स्तोक कंठस्थ	-	25 बोल, 67 बोल, लघुदण्डक, जीवधड़ा, 33 बोल, गुणस्थान स्वरूप, 5 समिति 3 गुप्ति, जीव-अजीव पज्जवा, कर्मग्रन्थ 1 से 5 आदि 50 थोकड़े।
स्तोत्र कंठस्थ	-	भक्तामर, कल्याणमंदिर, रत्नाकर पंचविंशति, महावीराष्टक, हीराष्टक, तत्त्वार्थ सूत्र
भाषा ज्ञान	-	हिन्दी, अंग्रेजी, तमिल, गुजराती, प्राकृत
धार्मिक परीक्षा	-	ज्ञानार्थी 1-3, स्तोक वारिधि-1-4, जैन धर्म कोविद-2, आध्यात्मिक शिक्षा समिति-2 परीक्षा
वैराग्यावधि	-	5 वर्ष

पीपाड़ दीक्षा-महोत्सव-कार्यक्रम

वि. सं. 2073 माघ शुक्ला द्वादशी, बुधवार, 08 फरवरी, 2017

शोभा यात्रा

प्रातः 10.30 बजे वीर परिवार के निवास स्थान से प्रारम्भ होकर परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. प्रभृति संत-सतीवृन्द के श्रीचरणों में पहुँचकर मांगलिक श्रवण किया जायेगा।

अभिनन्दन-समारोह

वीर परिवार एवं दीक्षार्थियों का

समय : अपराह्न 2.00 बजे

स्थान : श्री ओसवाल लोड़े साजन विकास केन्द्र (कोट)

- अध्यक्षता– माननीय श्री पी. शिखरमलजी सुराणा
  राष्ट्रीय अध्यक्ष - अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर
- मुख्य अतिथि– माननीय श्री गुलाबचन्द जी कटारिया
  गृहमंत्री - राजस्थान सरकार
- विशिष्ट अतिथि– माननीय श्री रवि जी जैन, IAS
  निदेशक - सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग
- सम्माननीय अतिथि– माननीय श्री हेमन्त कुमार जी जैन
  जिला एवं सत्र न्यायाधीश - अलवर

वि.सं. 2073 माघ शुक्ला त्रयोदशी, गुरुवार, 09 फरवरी, 2017

अभिनिष्क्रमण यात्रा

प्रातः 09.00 बजे वीर परिवारों के निवास स्थान से प्रस्थान कर दीक्षा स्थल पर पहुँचेगी, जहाँ परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा., महान् अध्यवसायी सरस व्याख्यानी श्रद्धेय श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा. आदि संत-सतीमण्डल के पावन सान्निध्य में दीक्षा-महोत्सव कार्यक्रम प्रारम्भ होगा।

दीक्षा विधि शुभारम्भ

प्रातः 11.30 बजे लगभग-परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के मुखारविन्द से

आयोजक

धनेन्द्र चौधरी, अध्यक्ष; परेश मुथा, मंत्री
श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, पीपाड़शहर

उत्तमचन्द कोठारी, अध्यक्ष; सुमतिचन्द मेहता, मंत्री
श्री वर्द्धमान जैन श्रावक संघ, पीपाड़शहर

निवेदक पी. दलीचन्द, झूमरलाल, प्रेमचन्द, सुरेशचन्द, रविन्द्रकुमार, नवरतन कुमार, अशोककुमार हरीशकुमार, धीरज एवं समस्त कवाड़ परिवार, पीपाड़ सिटी, हाल मुकाम चेन्नई (तमिलनाडु)

दीक्षा-आयोजन समिति

महेन्द्र कटारिया-नागपुर
उपाध्यक्ष-09422459676

धर्मेश चौपड़ा-बालोतरा
मंत्री- 09414108191

अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ

सुभाषचन्द कटारिया
094145-63629
दीक्षा संयोजक-पीपाड़शहर

स्वागत-समिति

मोफतराज मुणोत
स्वागताध्यक्ष

सम्पतराज चौधरी
स्वागत मंत्री

पदमचन्द मेहता
सदस्य

बसंत के. जैन
सदस्य

संघ कार्यालय सम्पर्क-सूत्र

श्री कैलाशमल भण्डारी
संयुक्त महामंत्री
099291-06314

प्रधान कार्यालय
घोड़ों का चौक, जोधपुर
0291-2636763, 2641445

पीपाड़ शहर सम्पर्क-सूत्र

धनेन्द्र चौधरी
अध्यक्ष
094144-62677

परेश मुथा
मंत्री
094146-01639

रविन्द्र सिंघवी
युवक परिषद् अध्यक्ष
094146-01779

सुमतिचन्द मेहता
संयोजक-वात्सल्य निधि
094144-62729

श्रेणिक कटारिया
भोजन व्यवस्था
094646-46400

निर्मल चोरडिया
आवास व्यवस्था
094141-45524

वीर परिवार

स्थायी पता

708- Trunk Road,
Poonammllee
Chennai -600 056 (T.N.)

168- Trunk Road,
Poonammllee
Chennai -600 056 (T.N.)

पीपाड़ निवास स्थान

पी. दलीचन्द, प्रेमचन्द, सुरेशचन्द कवाड़
पीपाड़ सिटी, जिला-जोधपुर (राज.)

सम्पर्क सूत्र

सुरेशचन्दजी
098401-95111

रविन्द्रकुमारजी
093810-06563

नवरतनकुमारजी
099400-94007

हरीशकुमारजी
095001-14455

आवश्यक निवेदन

1. दीक्षा-महोत्सव की जानकारी सकल संघ में एवं क्षेत्र में रहने वाले श्रावक-श्राविकाओं तक पहुँचाने का लक्ष्य रखें।
2. दीक्षा-महोत्सव पर पधारने वाले श्रीसंघों एवं श्रद्धालुओं को परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्रजी म.सा. महान् अध्यवसायी सरस व्याख्यानी श्रद्धेय श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा. आदि मुनि मण्डल एवं व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलताजी म.सा., व्याख्यात्री महासती श्री चारित्रलताजी म.सा. आदि महासतीवृन्द के दर्शन-वन्दन, प्रवचन-श्रवण एवं सत्संग-सेवा का लाभ प्राप्त होगा।
3. दीक्षा महोत्सव प्रसंग पर आचार्यप्रवर सहित मुनिमण्डल के श्रीमती शरदचन्द्रिका मुणोत स्वाध्याय भवन, राता उपाश्रय के पास, पीपाड़ शहर में विराजने की संभावना है तथा महासती मण्डल के जय भवन, पीपाड़ शहर में विराजने की संभावना है।
4. आवागमन के साधन- नजदीक का रेलवे स्टेशन पीपाड़ रोड, गोटन, मेड़ता रोड एवं जोधपुर है। हवाई सेवा जोधपुर तक उपलब्ध है। जोधपुर एवं मेड़ता से पीपाड़ शहर 60 कि.मी. दूरी पर स्थित है। यहां से नियमित अंतराल पर बस सेवा उपलब्ध है।
5. आपके पधारने की सूचना सम्पर्क सूत्र पर अवश्य दिरावें।

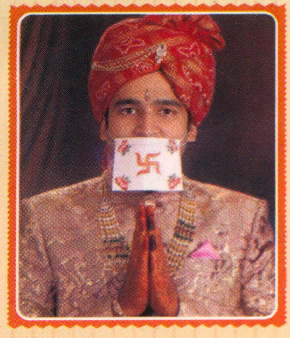

मुमुक्षु बन्धु श्री कल्पेशजी कवाड़

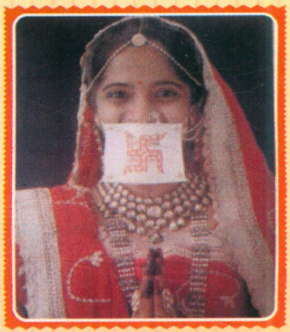

मुमुक्षु बहिन सुश्री मधुबालाजी कवाड़

मुमुक्षु बहिन सुश्री हिमांशीजी कांकरिया

मुमुक्षु आत्माओं के संयम जीवन की अनुमोदना

अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

अ.भा. श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल

अ.भा. श्री जैन रत्न युवक परिषद

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ

अ.भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

अ.भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक संस्कार केन्द्र

युवा-स्तम्भ

संलेखना-संथारा : एक पुनर्विचार

डॉ. धर्मचन्द जैन

सत्य की सदा विजय होती है। सर्वोच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने 31 अगस्त 2015 को सुनवाई के पश्चात् राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा 10 अगस्त 2015 को प्रदत्त उस निर्णय पर रोक लगा दी है, जिसमें संलेखना-संथारा की प्रवृत्ति को आत्महत्या की श्रेणी में रखकर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 309 के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध घोषित किया गया था तथा संलेखना-संथारा के लिए प्रेरित करने या उकसाने वाले को भारतीय दण्ड संहिता 306 के तहत अपराधी करार दिया गया था। उच्च न्यायालय ने सन् 2006 में दायर जनहित याचिका पर यह निर्णय दिया था।

राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय से समग्र जैन समाज की धार्मिक भावना आहत हुई। अतः सम्पूर्ण देश में इस न्यायिक निर्णय के प्रति 13 राज्यों के शताधिक नगरों में लगभग 76 लाख महिला-पुरुषों ने शान्ति रैली अथवा मौन जुलूस आयोजित कर भारी विरोध प्रदर्शित किया तथा जिला कलक्टर अथवा सम्बद्ध अधिकारियों को ज्ञापन दिए। कुछ स्थानों से राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, गृहमंत्री एवं राज्यों के मुख्यमंत्रियों को भी पत्र लिखे गए।

सकारात्मक प्रभाव

उच्च न्यायालय के इस निर्णय के नकारात्मक होने पर भी समाज पर कुछ सकारात्मक प्रभाव दृष्टिगोचर हुए हैं। सबसे बड़ा लाभ तो यह हुआ कि समग्र जैन समाज एक सूत्र में बंधकर इस निर्णय के विरोध में खड़ा हुआ। संकट के समय जैनों की विभिन्न सम्प्रदाएँ एक मंच पर एक साथ एक लक्ष्य को लेकर खड़ी हो गई। व्यापारियों ने अपने प्रतिष्ठान बन्द रखे तथा कर्मचारियों ने भी अवकाश लेकर सोमवार 24 अगस्त 2015 को मौन जुलूस में भाग लेकर अनुचित निर्णय के प्रति विरोध दर्ज किया। दूसरा लाभ यह हुआ कि संलेखना-संथारा के सम्बन्ध में विपुल सामग्री एक साथ एकत्रित हो गई। तीसरा लाभ यह हुआ कि शास्त्र-स्वाध्याय एवं सही जानकारी के प्रति प्रेरणा जागृत हुई। इस निर्णय से यह भी संदेश गया है कि धर्म के नाम पर कहीं कुछ गलत प्रवृत्ति होती है तो उसे सुधारने की आवश्यकता है। उच्च न्यायालय के निर्णय से अन्य और भी तथ्य ध्वनित हुए हैं। उदाहरण के लिए संलेखना-संथारा जैसी पवित्र आराधना स्वेच्छा से एवं जागृत अवस्था में ग्रहण की जानी चाहिए, इसका अचेत अवस्था में एवं गुरु या परिजनों की इच्छा के बिना प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। यदि कोई संथारे का पालन करने में अपनी असमर्थता जाहिर कर दे तो उससे जबरदस्ती पालन करवाने का आग्रह नहीं करना चाहिए। यदि साधक की साधना में शिथिलता आ जाए तो उसे समझाने का एवं भावों को दृढ़ करने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिए, किन्तु बलात् उसकी इच्छा के विरुद्ध संथारे के पालन पर जोर नहीं देना चाहिए। सिद्धान्त रूप से संलेखना-संथारा साधना की एक उत्तम प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से कर्मों की तीव्रता से निर्जरा होती है, किन्तु अज्ञान के कारण व्यवहार में यह प्रक्रिया दूषित भी हुई है, जिसका निराकरण करने की प्रेरणा भी उच्च न्यायालय के निर्णय से प्राप्त हुई है।

उच्च न्यायालय के तर्क

राजस्थान उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री सुनील अम्बवानी एवं न्यायाधीश श्री वीरेन्द्र सिंह सिरढाणा की खण्डपीठ ने श्री निखिल सोनी द्वारा भारतीय संघ एवं अन्य (Union of India & others) के विरुद्ध दायर याचिका एवं श्री पी.सी. भण्डारी आदि उत्तरदाताओं के तर्कों एवं प्रमाणों पर विचार करते हुए उपर्युक्त निर्णय

प्रदान किया है। माननीय न्यायालय ने संथारे के विरोध में निम्नांकित प्रमुख तर्क दिए हैं-

1. संथारा या संलेखना जैनधर्म की आवश्यक धार्मिक प्रवृत्ति है, ऐसा स्थापित नहीं हो पाया है। आगमों, उपदेशों, लेखों और प्रवृत्तियों में इसे आवश्यक धार्मिक प्रवृत्ति नहीं माना गया है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए इसे अनिवार्य रूप से जरूरी नहीं माना गया है। धार्मिक शास्त्रों में ऐसा कोई उपदेश नहीं है, जिसमें यह कहा गया हो कि संथारा या संलेखना ही एक मात्र मोक्ष का हेतु है, जिसके बिना मोक्ष नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में कोई सामग्री प्राप्त नहीं होती जिससे यह ज्ञात हो सके कि अधिकतर साधुओं या व्यक्तियों के द्वारा निर्वाण-प्राप्ति के लिए यह प्रवृत्ति अपनाई गई हो।
2. संथारा या संलेखना जैन धर्म या दर्शन का आवश्यक हिस्सा नहीं है और आत्मा की मुक्ति के लिए शरीर त्याग हेतु इसे प्रायः अपनाया नहीं गया है।
3. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 में धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार दिया गया है, किन्तु अनुच्छेद 21 में यह शर्त दी गई है कि उस धर्मकार्य से लोक-व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य आदि बाधित नहीं होने चाहिए। किसी के प्राण लेना धर्म की प्रवृत्ति के अन्तर्गत अनुमति योग्य नहीं है।
4. उत्तरदाता संलेखना या संथारा को आवश्यक धार्मिक प्रवृत्ति के रूप में स्थापित करने में असफल रहे हैं। इसका कोई प्रामाणिक दस्तावेज उपलब्ध नहीं हो पाया है कि भारतीय संविधान के पहले या पश्चात् संलेखना या संथारा का किसी ने प्रयोग किया हो।

संथारा : आगमसिद्ध एवं प्रयोगसिद्ध

माननीय न्यायालय के द्वारा निर्णय के जो आधार दिए गए हैं, उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि जैन परम्परा में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर जो संलेखना-संथारा की अन्तिम आराधना के रूप में प्रक्रिया प्रचलित रही है तथा उसके सैकड़ों प्रमाण विभिन्न आगम-ग्रन्थों, शिलालेखों एवं संग्रहालयों में उपलब्ध हैं, उनके प्रति न्यायालय की दृष्टि नहीं जा पायी है। आचारांग सूत्र, स्थानांग सूत्र, व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र आदि विभिन्न आगमों, आतुर प्रत्याख्यान, संथारग प्रकीर्णक आदि प्रकीर्णक साहित्य, मूलाचार, भगवती आराधना, आराधना पताका आदि अनेक ग्रन्थ संलेखना के साक्षी हैं। संथारा ग्रहण करने वाले श्रमण भी रहे हैं एवं श्रावक भी। व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र में स्कन्दक, कुरुदत्त अणगार, गांगेय अणगार, महाबल मुनि, उदायन राजा, कार्तिक सेठ आदि के द्वारा संथारा ग्रहण करने का उल्लेख प्राप्त होता है। ज्ञाताधर्मकथांग में मेघकुमार, धन्ना सार्थवाह, थावच्चापुत्र, मल्लीभगवती, धर्मरुचि अणगार आदि ने समाधिमरण प्राप्त किया है। अन्तकृद्दशा सूत्र में सभी 90 साधकों ने संथारे से मुक्ति प्राप्त की है। उपासकदशांगसूत्र में आनन्द आदि श्रावकों द्वारा भी यह साधना स्वीकार की गई है। इस प्रकार प्राचीन साहित्य में संलेखना-संथारा की पद्धति एवं उसके उदाहरणों का पर्याप्त उल्लेख हुआ है। भारतीय संविधान के लागू होने के पश्चात् के भी सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं। पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी से प्रकाशित श्री रज्जनकुमारजी की पुस्तक 'समाधिमरण' के पृ. 181 से 189 तथा श्री उदयमुनिजी की पुस्तक 'संलेखना-संथारा-समाधि' जो श्री दिनेशकुमार जैन, धुलिया कटरा, चांदनी चौक, दिल्ली (मो. 9953723403) से प्रकाशित है, के पृष्ठ 379 से 384 तक इसकी पुष्टि में द्रष्टव्य हैं। न्यायालय में जैन समाज की ओर से इसके सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध करायी गई थी, किन्तु माननीय न्यायालय द्वारा इसकी उपेक्षा हुई है।

संथारा एवं संलेखना

'संथारा' एवं 'संलेखना' पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। संलेखनापूर्वक संथारा किया जाता है। संलेखना/सल्लेखना के द्वारा कषायों एवं शरीर को कृश किया जाता है। कषायों को कृश करना मूल लक्ष्य है, उसकी

पूर्ति के लिए शरीर को भी कृश किया जाता है। प्रथम आभ्यन्तर संलेखना है तथा दूसरी बाह्य संलेखना है। संलेखना की प्रक्रिया संथारा (संस्तारक के रूप में अन्तिम शय्या) ग्रहण करने के पूर्व प्रारम्भ हो जाती है तथा संथारा साधना में भी वह प्रक्रिया जारी रहती है। श्वेताम्बर परम्परा में 'संथारा' के सूचक 'संथारग', 'संथारए' आदि शब्दों का भूरिशः प्रयोग हुआ है। एक प्रकीर्णक ग्रन्थ 'संथारगपइण्णयं' नाम से विरचित है, जिसमें संथारे के सम्बन्ध में विस्तृत निरूपण हुआ है तथा संथारा करने वालों के अनेक उदाहरण दिए गए हैं। आकस्मिक आने वाली मारणान्तिक परिस्थितियों में भी संथारा ग्रहण करने का इसमें उल्लेख हुआ है। उदाहरणार्थ सुकोशल मुनि चातुर्मास के पारणादिवस पर पर्वत से नीचे उतरते समय बाघिन के द्वारा भक्षित कर लिए गए, तब भी वे समाधिमरण को प्राप्त हुए। चिलातीपुत्र के शरीर को चींटियों द्वारा छलनी कर दिए जाने पर भी उन्होंने समता भाव रखकर समाधिमरण को प्राप्त किया। इसमें प्रदत्त अनेक उदाहरणों से ज्ञात होता है कि अचानक मृत्यु का प्रसंग आने पर भी समभाव धारण करने से उत्तम लक्ष्य की प्राप्ति होती है। संथारा करने वाले को 'जीव अन्य है और शरीर अन्य है' इसकी प्रतीति रहती है।

संथारा वह अन्तिम बिछौना है, जो संसार सागर से जीव को तारकर पार ले जाता है। सम्यक् प्रकार से तारने वाली अन्तिम शय्या को संस्तारक अथवा संथारा कहा जाता है। यह संथारा सूखी घास-फूस से बना होता है। कभी प्रासुक भूमि या शिला भी संस्तारक हो सकती है, किन्तु वास्तव में तो विशुद्ध चारित्र में स्थित आत्मा ही संथारा होती है (**अप्पा खलु संथारो हवइ**-संथारगपइण्णयं, गाथा 53), क्योंकि उसकी शुद्धता ही कर्म-निर्जरा करते हुए तारने वाली होती है। इसमें अशनादिक का त्याग जारी रहता है। संलेखना-संथारा में ज्ञानी जीव कर्मों की अनन्तगुणी निर्जरा करता है, जो मोक्ष में हेतु है। तप को जैनदर्शन में मोक्ष का साधन माना गया है-

णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गुत्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसीहिं।।-उत्तराध्ययन सूत्र, 28.2

सम्यग् ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र के साथ तप भी मोक्ष का मार्ग है। निर्जरा का प्रमुख साधन तप ही है- **तपसा निर्जरा च।** (तत्त्वार्थसूत्र 9.3) तप से कर्मों की निर्जरा होती है तथा कर्मों की निर्जरा से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

संथारा : एक विरल किन्तु महत्त्वपूर्ण धार्मिक प्रवृत्ति

उच्च न्यायालय का यह कथन सत्य है कि संथारा कोई आवश्यक धार्मिक प्रवृत्ति नहीं है। किन्तु उच्च न्यायालय को इस पर ध्यान देना चाहिए कि यह कोई प्रथा नहीं, जिसका निर्वाह आवश्यक हो, यह एक ऐसी महत्त्वपूर्ण विरल धार्मिक प्रवृत्ति अवश्य है, जो आध्यात्मिक पवित्रता का स्वरूप ग्रहण किए हुए है। लाखों में दो-चार विरल साधक ही इस पद्धति से मृत्यु को महोत्सव बना पाते हैं। आमजन में वह क्षमता नहीं कि वे संलेखना पूर्वक संथारा कर सकें। न्यायालय यदि किसी के जबर्दस्ती संथारा कराने पर रोक लगाता है तो फिर भी उचित कहा जा सकता है, किन्तु इस पावन प्रक्रिया पर रोक लगाने से जैनधर्म की अत्यन्त प्राचीन धर्मपद्धति समाप्त हो जाती है, जो आज मरण को समाधिमरण में परिवर्तित कर देती है। संथारा में साधक ध्यानसाधना, जप-साधना एवं आत्मचिन्तन में निरत रहता है। वह किसी जीव को एवं मनुष्य को हानि नहीं पहुँचाता। मृत्यु को सहजता से स्वीकार करने की इस अद्भुत विधि को संरक्षित एवं विश्वव्यापी बनाए जाने की आवश्यकता है। विनोबा भावे जैसे महापुरुषों ने भी प्रकारान्तर से इस पद्धति को अपनाया है।

मोक्ष में सहायक

संलेखना-संथारा की साधना मोक्षप्राप्ति में भी उपयोगी है। अंतगडदसासूत्र में वर्णित 90 आत्माओं ने संलेखना-संथारापूर्वक उसी भव में मोक्ष प्राप्त किया था। अन्यत्र भी ऐसे उल्लेख मिलते हैं।

संस्तारक प्रकीर्णक में कहा गया है कि जो धीर पुरुष प्रशस्त संथारे में मृत्यु का स्वागत करते हैं वे उसी भव में अथवा तीसरे भव में कर्मरज से रहित होकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं –

एवं मरिऊण धीरा संथारम्मि उ गुरुपसत्थम्मि।
तइयभवेण व तेण व सिज्झिज्जा खीणकम्मरया।।

-संस्तारक प्रकीर्णक गाथा, 116

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संथारापूर्वक समाधिमरण जीवन को एक ऐसा आलोक प्रदान करता है जो मनुष्य के अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों को उज्ज्वल बना देता है।

जैन धर्म का आवश्यक हिस्सा है संथारा

भारतीय संविधान के पूर्व हजारों सन्तों, साध्वियों एवं श्रावकों (गृहस्थों) ने संलेखना-संथारापूर्वक समाधिमरण प्राप्त किया है। इसकी प्रामाणिक सूची उपलब्ध है। संविधान के पश्चात् भी सैकड़ों संतों-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं ने संथारापूर्वक समाधिमरण का वरण किया है। इसलिए ऐसा नहीं कहा जा सकता है यह जैनधर्म का आवश्यक हिस्सा नहीं है। यह एक महान् तप है। जिस प्रकार एक परीक्षार्थी वर्ष भर अध्ययन करने का समय मिलने पर भी परीक्षा की घड़ी निकट आने पर विशेष तैयारी करता है, उसी प्रकार एक साधक के जीवन की अन्तिम घड़ी आने पर वह कर्म-निर्जरा हेतु विशेष साधना करता है। वह विशेष साधना ही संलेखनापूर्वक संथारा है। वह अपने राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारों पर विजय प्राप्त करने हेतु इस साधना को अपनाता है, जिसमें धीरे-धीरे आहारादि का भी त्याग कर देता है। वह शरीर से ममत्व का इतना त्याग कर देता है कि उस शरीर को यदि कोई व्याघ्रादि, सर्पादि भी हानि पहुँचाए तो वह बचने का प्रयत्न नहीं करता। वह समभाव की साधना को सर्वोच्च स्थान देता है। प्रज्ञा को जागृत रखता है। राग-द्वेष, यशःकांक्षा आदि से दूर रहता है। उसकी कोई अभिलाषा नहीं होती कि उसका यशगान किया जाए। वह मरण को सुधारने/सार्थक करने की परीक्षा की तैयारी में मनोयोग से सन्नद्ध रहता है। शरीर की चीरफाड़ करना हिंसा है, किन्तु एक सर्जन जब शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए चीरफाड़ करता है तो उसे हिंसा नहीं मानकर कानूनन स्वस्थ बनाने की क्रिया माना जाता है। इसी प्रकार संलेखना करने वाले साधक की बाह्य क्रिया भले ही आत्महत्या जैसी प्रतीत होती हो, किन्तु वह भावों से आत्म-चिकित्सा कर आध्यात्मिक दृष्टि से अपने को निर्मल, निर्दोष एवं शक्तिसम्पन्न बनाता है। उसे भीतर में आत्मशुद्धि एवं आत्मशान्ति का अनुभव होता है। हम बाह्य क्रिया से आभ्यन्तर प्रयोजन एवं प्रक्रिया को समझने में अनेक बार भ्रान्ति के शिकार हो जाते हैं, माननीय न्यायालय को भी सम्भवतः ऐसी ही भ्रान्ति हुई है, क्योंकि उन्हें ऐसे साहित्य एवं सच्चे साधकों से परिचित होने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है।

मृत्यु सबकी होती है, किन्तु रुदन, विलाप, क्रोध, जीने की आकांक्षा, तड़फन आदि के साथ मृत्यु को प्राप्त होने की अपेक्षा शान्ति के साथ बिना किसी उद्वेग के जीवन-मरण की आकांक्षा से रहित होकर मरण को प्राप्त होना निश्चित ही बेहतर है। इस प्रकार की मृत्यु की प्राप्ति एक साधनाशील साधु के जीवन में अपेक्षित है। वह शरीर रहते हुए इन्द्रिय एवं मन का संयम रखता है, तब भला जीवन के अन्त में वह शान्त भावों के साथ मरण को क्यों न स्वीकार करे? साधनाशील सद्गृहस्थ भी इस प्रकार की मृत्यु को प्राप्त करे तो क्या बाधा है?

आत्मघात का निषेध

जैनदर्शन में प्रत्येक जीव को जीने का अधिकार दिया गया है। सभी जीवों की रक्षा को धर्म का आवश्यक अंग माना जाता है। अन्य प्राणियों के वध को जिस प्रकार त्याज्य बताया गया है, उसी प्रकार स्वयं की घात करने को भी हेय बताया गया है। आगम में कहा गया है- **"अप्पाणं वि न घायए।"** अपनी भी हिंसा न करे। जैन परम्परा में

आत्मघाती को महापापी कहा गया है। इसलिए संथारे का साधक आत्मघात नहीं कर सकता। वह आत्मशुद्धि का लक्ष्य रखकर अपनी समस्त प्रकार की उपधि अर्थात् सामग्री का त्यागकर शरीर के प्रति भी ममत्व का त्याग कर देता है। शरीर के प्रति आसक्ति त्यागकर वह आहार के प्रति भी अनिच्छुक हो जाता है। आहार ग्रहण करने की प्रक्रिया को भी वह फिर साधना में बाधक मानता है, अतः अशनादि तीन या चार प्रकार के आहार का भी त्याग कर देता है, किन्तु अशनादि का त्याग करने के पूर्व वह महाव्रत आदि का पुनः आधान करता है, सब जीवों से क्षमायाचना करता है, आत्मालोचन कर आत्मशुद्धि करता है।

संलेखना-संथारा ग्रहण करने के लिए साधु को अपने गुरु से अनुमति लेनी होती है तथा श्रावक को भी अपने परिजनों से अनुमति लेना अपेक्षित है। आत्महत्या करने वाला अनुमति लेकर आत्महत्या नहीं करता। सतीप्रथा में आग में प्रवेश करके मृत्यु का वरण किया जाता है जबकि संथारा में मरने के लिए किसी प्रकार के बाह्य साधन को नहीं अपनाया जाता। संलेखना-संथारा ग्रहण करने वाले की मृत्यु को यथाकाल स्वाभाविक मृत्यु माना गया है (**तत्थावि तस्स काल परियाए।**-आचारांग, 1.8.7, सूत्र 228) इसमें मरण की एवं जीने की कामना नहीं होती। इस लोक में यश-कीर्ति आदि एवं परलोक के सुखों की भी अभिलाषा नहीं होती। वह कामभोग की इच्छाओं से रहित होता है। यदि कोई इनमें से किसी भी इच्छा को रखता हुआ संलेखना-संथारा ग्रहण करता है तो उसे निर्दोष संथारा नहीं कहा जा सकता है।

संथारा की पात्रता

मृत्यु उसी की समाधिपूर्वक होती है, जो प्रारम्भ से ही अपने चित्त को निर्मल रखता हुआ, अहिंसा, संयम एवं तप के साथ जीवन जीता है। उसे मृत्यु भी एक घटना ही लगती है, मृत्यु से उसे किसी प्रकार का भय नहीं होता। संसार से उसे कोई अपेक्षा नहीं होती। उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति स्वहित एवं परहित से युक्त होती है। वह जीवन जीते हुए भी सजग रहता है तो मृत्यु के समय में भी उसकी सजगता बनी रहती है। संयमी जीवन जीने वाले को मृत्यु का आभास पहले ही हो जाता है। इसलिए वह अत्यन्त सजगता के साथ उसे स्वीकार करता है। वह सहज रूप से देह त्याग के लिए तत्पर होता है। कुछ साधक इस मरण को सुमरण बनाने के लिए अथवा अपनी आत्मविशुद्धि को पूर्णता की ओर ले जाने के लिए संलेखनापूर्वक संथारा ग्रहण करते हैं।

प्रायः संथारा वे लोग ग्रहण नहीं कर पाते जिन्होंने प्रारम्भ से अन्त तक अपना जीवन अशांति, मूढता, पर-पदार्थों में जीवन बुद्धि एवं शरीर के प्रति अत्यन्त आसक्ति के साथ जीया है। ऐसे प्राणी अपने चित्त में संसार से विरक्ति का अनुभव नहीं करते, शरीर के प्रति आसक्ति को नहीं तोड़ पाते, मृत्यु से भयभीत होते हैं, इहलोक के सुखों का त्याग नहीं कर पाते हैं, इसलिए उनके द्वारा संलेखना-संथारा ग्रहण करना अत्यन्त दुष्कर रहता है। दूसरे शब्दों में कहें तो जिन्होंने संयम और वैराग्य का तनिक भी रस नहीं चखा है, वे संथारा ग्रहण करने की योग्यता नहीं रखते हैं। उनको संथारा कराना एक औपचारिक कृत्य तो हो सकता है, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से उसका कोई फल नहीं है। अयोग्य पात्र को संथारा कराना संथारे को बदनाम करना है। अतः जिन साधकों ने संयम एवं वैराग्य का स्वाद चखा है; इनके साथ जीवन जीने का अभ्यास किया है, मन, वचन, काया का गोपन किया है, दोषों को दोष समझा है, वे ही जीव संलेखनापूर्वक संथारा ग्रहण करने की पात्रता रखते हैं।

मृत्यु होना निश्चित है। एक दिन इस देह एवं परिवार जनों का साथ छूटने वाला है। इसलिए इस सत्य को स्वीकार कर शरीर छूटने के पूर्व ही उसके प्रति ममता का छूटना आवश्यक है। परिवारजनों के प्रति भी ममत्व बुद्धि का विनाश आवश्यक है। संसार से सुख भोग की इच्छा, अपेक्षा अथवा कामना का त्याग आवश्यक है। जो साधक इस आवश्यकता का अनुभव करता है उसकी संथारा साधना सफल होती है।

संथारा का किसी भारतीय परम्परा से विरोध नहीं

भारतीय परम्परा में योगपूर्वक शरीर त्याग की महत्ता रही है। कालिदास के रघुवंश में भी कहा गया है- ''योगेनान्ते तनुत्यजाम्।'' योगसाधना के साथ शरीर त्याग करना रघुवंशियों की चर्या रही है। संलेखना संथारा एक दार्शनिक विचारधारा है। जिसका विरोध किसी भी भारतीय दर्शन में प्राप्त नहीं होता। जीवन को सार्थक बनाने एवं जीवन का अन्त भी साधनामय बनाने का दर्शन भारत की विशिष्ट देन है। ऐसा सबका जीवन हो, इसमें कोई असहमत नहीं होगा, किन्तु व्यक्ति की मनःस्थिति एवं उसके पूर्व संस्कारों के कारण हर एक व्यक्ति संथारे को ग्रहण नहीं कर पाता है। माननीय न्यायालय ने इसे जैन धर्म की आवश्यक विशेषता भले ही न माना हो, किन्तु ऐसा जीवन जीना निश्चित ही हर एक साधक के जीवन को उन्नत बनाता है। अपने विकारों पर विजय पाना एवं पूर्ण स्वाधीनता का अनुभव होना जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि होती है। **शरीर के प्रति ममत्व रखने वाला व्यक्ति ही पराधीन होता है, उससे ममत्व हटाकर समस्त जगत् से कुछ भी न चाहना स्वाधीनता एवं स्वतन्त्रा का असली रूप है। अतः ऐसी स्वतन्त्रता पर रोक लगाना निश्चित ही आध्यात्मिक मूल्यों की अवमानना है।**

संथारा के लिए जो प्रक्रिया आगम में निरूपित है, तदनुसार साधक को इसे ग्रहण करना चाहिए। जो साधना में स्थिर एवं विचारों में परिपक्व होता है वह ही अपने कषायों को क्षीण करता हुआ शरीर से भी मोह रहित होकर उससे आत्मा को भिन्न समझता हुआ अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय में श्वेताम्बर एवं दिगम्बर समाज की ओर से विशिष्ट याचिकाएँ दायर की गई, जिसके परिणामस्वरूप सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति श्री एच.एल. दत्तू एवं न्यायाधिपति अमिताब राय की पीठ ने सुनवाई के पश्चात् राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय पर रोक लगाकर जैन समाज को आशान्वित कर दिया है, कि शीघ्र ही इस आध्यात्मिक साधना के पक्ष में निर्णय आएगा।

संलेखना-संथारा में विकृतियाँ

1. संलेखना-संथारा अथवा समाधिमरण की साधना जब अपात्र या अव्रती के द्वारा तथा असजगता में ग्रहण की जाती है अथवा इसे जबर्दस्ती ग्रहण कराया जाता है तो इस पावन साधना-पद्धति पर अंगुलि उठने लगती है। बेहोशी की अवस्था में एवं साधक की सहमति के बिना संथारा नहीं कराया जा सकता। आज जैन समाज में तपस्या एवं संलेखना-संथारा को प्रभावना के नाम पर अधिक ही महिमा मण्डित कर दिया गया है। इससे इसका मूल उद्देश्य धूमिल हो गया है। संलेखना-संथारा की पात्रता है या नहीं- इसका विचार किये बिना बेहोशी की अवस्था में भी संथारा कराकर परिवारजन संतुष्टि का अनुभव करते हैं। उन्हें इसका गर्व होता है कि उन्होंने अंतिम समय में दिवंगत होने वाली आत्मा को संथारा करा दिया है। इस प्रकार की प्रवृत्ति समाज में बढ़ रही है। डॉक्टर के द्वारा यह सुनिश्चित हो जाने पर कि जीवन अधिक समय का नहीं है, फिर भी परिवारजन अस्पताल में डटे रहते हैं। अन्तिम समय में यदि चेतना एवं सजगता है तो रोगी को घर पर लाकर अनित्य, अशरण आदि भावनाओं के माध्यम से संसार के प्रति अनासक्ति एवं देह के प्रति ममता का त्याग करने हेतु प्रेरित किया जा सकता है।
2. कहीं ऐसा सुना गया है कि संथारा ग्रहण करने वाले व्यक्ति की इच्छा जल पीने की होती है, तथापि उसे बार-बार मांगने पर भी यह कहकर मना कर दिया जाता है कि उसे अगले जन्म में जल के भण्डार भरे मिलेंगे। इस प्रकार का व्यवहार संथारे की प्रक्रिया को एवं महत्ता को बदनाम करता है। साधक की इच्छा यदि संथारा जारी रखने की नहीं है तो उसे छोड़ने का उसी प्रकार अधिकार दिया जा सकता है, जिस प्रकार कोई साधु जीवन को छोड़कर सांसारिक जीवन में जाने का अधिकार रखता है। संथारे की गरिमा बनी रहे, इसलिए इसे ग्रहण करना

या कराना इतना आसान न बनाया जाए कि लोग इस पर अंगुली उठा सकें। सूत्रकृतांग सूत्र (द्वितीय श्रुत स्कन्ध, सप्तम अध्ययन) में इसका उल्लेख मिलता है कि कोई व्रतधारी साधक व्रतों का पालन करने में अपने को असमर्थ अनुभव करता हो तो वह उन्हें त्याग सकता है। संथारा भी एक व्रत है। संथारा करने वाला यदि आर्त्तध्यान में रहता है तथा उसे छोड़ने के लिए बार-बार कहता है, समझाने पर भी नहीं समझता है तो ऐसा संथारा कोई अर्थ नहीं रखता। ज्ञानपूर्वक स्वेच्छा से किया गया संथारा ही मोक्ष का साधन बनता है। इसलिए संथारा ग्रहण करने वाले की दृढ़ता का परीक्षण करके ही संथारा कराना उचित है।

3. संलेखना-संथारा आत्मसाधना है। उसमें प्रदर्शन को कोई स्थान नहीं है। यदि किसी संथारा-साधक की रुचि प्रदर्शन में हो तो वह आत्मसाधना में पूर्णतः संलग्न नहीं हो पाता है। उसमें द्रष्टाभाव, तटस्थता, समता भाव स्थिर नहीं रह पाता। आज संथारा-साधक के दर्शनों की जो परम्परा चल रही है वह अनुमोदन का हिस्सा हो सकती है, किन्तु संथारा-साधक की साधना में इससे विघ्न ही सम्भावित है। संथारा साधक के भावों की निर्मलता एवं उत्कृष्टता के लिए यदि वैराग्यपरक भजनों को भावपूर्वक गाया जाता है, अनित्य, अशरण आदि भावनाओं को पुष्ट करने वाले वाक्यों एवं स्तवनों को प्रस्तुत किया जाता है, पंचमहाव्रतों की विशुद्धि अथवा व्रतों की विशुद्धि कराई जाती है तो संथारा साधक के लिए इसे उपयोगी कहा जा सकता है। संथारा साधक संसार के समस्त प्राणियों से अपने कृत दोषों के लिए क्षमायाचना करने के साथ अपने निकटवर्ती संत-सतियों, परिवारजनों एवं सहयोगियों से भी निर्मल हृदय से क्षमायाचना करता है। वह शरीर की ममता का त्याग करने के साथ शरीर से अपने को पृथक् समझता है एवं आत्मलीन रहता है। सजगता, चिन्मयता, ज्ञानरूपता एवं द्रष्टापने का निरन्तर अनुभव होना आत्मलीनता का परिचायक है। साधक के आत्मलीन होने पर ही साधना की दृष्टि से संथारा सार्थक होता है। बाहर कितने दर्शनार्थी आते हैं, कितनी बड़ी लाइन लगती है, इससे साधक को कोई लाभ नहीं होता, संघ, समाज एवं परिवारजनों को अवश्य गौरव का अनुभव होता है। गजसुकुमाल आदि साधकों के संथारा ग्रहण करने पर कोई दर्शन करने नहीं गया।

मृत्यु की श्रेष्ठता

मृत्यु को सहर्ष स्वीकार करने के अन्य उदाहरण भी मिलते हैं, किन्तु उनके प्रयोजन भिन्न हैं। एक तो देशभक्त सैनिक जो देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देता है, दूसरा वह जो स्वेच्छा से राग-द्वेष के आवेश एवं हताशा में मृत्यु की गोद में चला जाता है, जिसे आत्महत्या का नाम दिया जाता है। देश की रक्षा के लिए अथवा नागरिकों की रक्षा के लिए मृत्यु प्राप्त होने पर सैनिकों की जय-जयकार की जाती है, मरणोपरान्त पदक प्रदान किया जाता है। यहाँ सैनिक के त्याग एवं बलिदान को महिमा मण्डित कर अन्य सैनिकों को देश हित में मरने के लिए प्रेरित किया जाता है। यह मरण भी प्रशंसनीय है। किन्तु जो आत्मसाधक किसी प्रकार की हानि पहुँचाये बिना देश एवं विश्व के सभी प्राणियों के प्रति मंगल भावना के साथ अपने शरीर से अनासक्त होकर देह त्याग करता है तो उसे क्यों कानून के कटघरे में खड़ा किया जाता है?

संथारा एवं तप पर प्रश्नचिह्न

संथारा एक आध्यात्मिक मरण है, यह ज्ञानपूर्वक एवं उच्च भावों के साथ मरण को निर्भय होकर स्वीकार करने की पद्धति है। इसे यदि विकृत किया जाता है तो वह विकार निवारण करने योग्य है, किन्तु एक विशुद्ध मरण की साधना पद्धति पर प्रश्न उठाना भारतीय परम्परा एवं संस्कृति के प्रति अनभिज्ञता है।

भारतीय साहित्य में जिस प्रकार सुन्दर जीवन की पद्धति का निरूपण हुआ है उसी प्रकार मरण की भी सुन्दर पद्धति दी गई है। जैन आगम, त्रिपिटक आदि इसके सुन्दर उदाहरण हैं। संथारे से यदि साधक दुःखी हो रहा हो, उसे

जबरदस्ती संथारा कराया गया हो, उसके न चाहने पर भी संथारा जारी रखा गया हो, उससे किसी की हानि हो रही हो तो ऐसे संथारे पर प्रश्न चिह्न लगाया जा सकता है अथवा कानून इसे अपने दायरे में ले सकता है। यहाँ पर यह भी कहना उपयुक्त होगा कि विकृत संथारे की घटना को कानून अपने दायरे में ले उससे पूर्व ही संघ-समाज के सुज्ञ व्यक्ति ऐसे संथारे को निरन्तर जारी रखने पर समझाइश कर सकते हैं। धर्माचार्य एवं धर्मगुरुओं से भी इस सम्बन्ध में मार्गदर्शन लिया जा सकता है। यह परम्परा विकृत न हो तथा न्यायालयों तक इस पर प्रश्न न पहुँचे, यह सावधानी आवश्यक है। तप के सम्बन्ध में भी ऐसी विकृतियाँ आ रही हैं। शरीर के सामर्थ्य से अधिक तप साधना कराना अनचाही मृत्यु को आमन्त्रण देना है। साधना में सहजता होती है। बलात् तप करने या कराने में हानि की सम्भावना रहती है। तपस्वी सन्तों एवं आचार्यों के सान्निध्य में तप करने पर विशेष ऊर्जा एवं उत्साह का अनुभव होता है, जिससे दीर्घकालीन तप भी सम्भव बनते हैं। तपस्या करने के साथ विषय-कषाय का त्याग भी अनिवार्य है। विषय-कषायों का सेवन करते हुए तप करना आत्मशुद्धि में सहायक नहीं होता। तपस्या करते हुए जिस प्रकार मन-वचन-काया के प्रति सावधानी एवं संयम की आवश्कता होती है उसी प्रकार तप के पारणक के पश्चात् भी खान-पान एवं शारीरिक श्रम सम्बन्धी अनेक सावधानियाँ रखनी होती हैं। जो इसमें चूक करता है उसे दुष्परिणाम भोगना पड़ता है एवं तपस्या कलंकित होती है।

संथारा की पूर्व घोषणा करना उचित नहीं

संथारा के सम्बन्ध में ऐसा संकल्प करना कि अमुक आयु होने पर मैं संथारा ग्रहण कर लूँगा, यह अनुचित निर्णय है। अमुक आयु में संसार से निवृत्ति (व्यापार आदि कार्यों से निवृत्ति) लेने का संकल्प तो फिर भी उचित कदम है, किन्तु देह त्याग के लिए स्वस्थ अवस्था में भी आयु के आधार पर संकल्प ग्रहण करना आधुनिक कानून की दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। शरीर की रोगाक्रान्तता, अशक्तता एवं मृत्यु की सन्निकटता के कतिपय लक्षणों को जानकर संलेखना संथारा ग्रहण करना उपयुक्त है। संलेखना की तैयारी पहले से हो सकती है, किन्तु संथारा समय आने पर ही स्वीकार करना चाहिए। पूर्व तैयारी से आशय कामना, ममता एवं अहंता पर विजय के प्रयास से है। आत्मशुद्धि की सतत आवश्यकता होती है। इसे अन्तिम समय का कार्य समझकर छोड़ना उचित नहीं है। फिर भी अन्तिम समय में भी जागरूकता बनी रहे एवं मानवभव मिलना सार्थक हो जाए, इस दृष्टि से चेताया जाता है कि देह त्याग के समय भावों की शुद्धि एवं शरीर, परिवार आदि के प्रति ममत्व का नाश हो जाये तो आत्मा को समाधि, शांति एवं ज्ञान की पूर्णता प्राप्त हो सकती है।

इच्छा मृत्यु एवं संथारा

संथारा एवं इच्छा-मृत्यु (Uthenesia) को एक श्रेणि में नहीं रखा जा सकता। इच्छा-मृत्यु शरीर की पीड़ा को सहन न करने के कारण वरण की जाती है जबकि संथारे में शरीर की पीड़ा को सहन करते हुए समता में रहने का अभ्यास किया जाता है। इच्छा मृत्यु में दुःख का भय रहता है, संथारा में निर्भयता का आचरण होता है। इच्छा मृत्यु कोई साधना नहीं है जबकि संथारापूर्वक मृत्यु का स्वागत करना आत्मविजय की साधना है। इच्छा मृत्यु में इंजेक्शन आदि बाह्य साधन की अपेक्षा होती है, जबकि संथारा में ऐसे साधन का पूर्ण परिहार किया जाता है। इच्छा मृत्यु में दुःख से तात्कालिक छुटकारा पाने की अभिलाषा रहती है जबकि संथारा में दुःख से आत्यन्तिक छुटकारा पाने के लिए दुःख के मूल कारण कषाय का क्षय किया जाता है। दूसरे के आत्यन्तिक दुःख को देखकर उसे मृत्यु प्रदान करना 'करुण मृत्यु' (Mercy Killing) है। करुण मृत्यु को व्यावहारिक दृष्टि से भले ही उपयुक्त माना गया हो, किन्तु यह मानवाधिकार के हनन की कोटि में भी आता है।

संलेखना-संथारा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की उर्वरा भूमि में ही फलीभूत होता है।

पदार्थों की प्राप्ति एवं उनके संरक्षण में सुख मानना एवं उनके अभाव में दुःख मानना मिथ्या धारणा है। संथारा साधक इस मिथ्या धारणा को तोड़कर पर पदार्थों की कामना से रहित होता है। उसकी दृष्टि में ऐसी निर्मलता आना सम्यग्दर्शन है। इस सम्यग्दर्शन के साथ निरन्तर सजगतापूर्वक प्रज्ञा का जागरण सम्यग्ज्ञान का पोषक है। यह सम्यग्ज्ञान उसकी साधना को दृढ़ता एवं पोषण प्रदान करता है, सम्यग्ज्ञानी को किसी प्रकार की शंका या संदेह नहीं होता। वह सत्य का उपासक बनकर आत्मदोषों के प्रक्षालन में संलग्न रहता है। सम्यक् चारित्र से इन दोषों के प्रक्षालन का कार्य सरल हो जाता है। व्रतों की शुद्धि के साथ दोषों की शुद्धि होती है तथा सर्वविध पापों से मुक्ति मिलती है। पापों से रहित होना ही सम्यक् चारित्र है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के साथ की गई तप-साधना कर्म-निर्जरा में विशेष सहायक होती है। *-3 के 24-25, कुड़ी हाउसिंग बोर्ड, जोधपुर (राज.)*

समाधिमरण के सोपान

जैन साहित्य के आधार पर विचार करें तो समाधिमरण के विभिन्न सोपान हैं, जिन्हें निम्नांकित बिन्दुओं में प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. **संलेखना-** इस साधना का लक्ष्य कषायों में कमी लाना है। जो साधक तपस्या आदि के माध्यम से शरीर को कृश तो कर लेता है, किन्तु कषायों को कृश नहीं करता, उसकी साधना निष्फल रहती है।
2. **आत्म-आलोचना-** अपने दोषों की आलोचना स्वयं करके अथवा गुरु के समक्ष करके दोष रहित हुआ जाता है।
3. **व्रताधान-** दोषों को त्यागने के साथ साधु-साध्वी पंच महाव्रतों को पुनः स्वीकार करते हैं।
4. **क्षमायाचना-** संथारा स्वीकार करने वाला सबसे वैर-विरोध त्यागकर दूसरों के प्रति क्षमाभाव लाकर अपने निकटवर्तियों से क्षमायाचना करता है।
5. **संस्तारक (संथारा)-** पृथ्वी, शिलामय, फलमय तृणमय आदि अंतिम बिछौना स्वीकार करके संसार सागर से तिरने की कला ही संस्तारक है। शुद्ध संथारे पर आरूढ होने वाला साधक षड्जीव निकाय की हिंसा से विरत होता है, सात भय स्थानों व आठ मदों से रहित होकर नव प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्ति से युक्त होता है एवं दस धर्मो का पालन करता है। संस्तारकप्रकीर्णक गाथा 46 में कहा गया है कि संथारा ग्रहण करने के प्रथम दिन ही इतना लाभ होता है कि उसका मूल्य आंकना कठिन है।
6. **आहार, शरीर एवं उपधि का त्याग-** जब देह छूटने का समय नजदीक हो तो आहार करने से क्या लाभ? तब तो शरीर से भी ममत्व छोड़ने के साथ उससे भिन्नता का अनुभव करना चाहिए-अन्नं इमं सरीरं अन्नो जीव त्ति(यह शरीर अन्य है एवं जीव अन्य है। -संस्तारक प्रकीर्णक, गाथा 100)। साधक घर, सम्पत्ति, वस्त्र आदि अन्य वस्तुओं से भी ममत्व का त्याग कर देता है।
7. **भावनाओं का दृढीकरण-** वैराग्यपरक चिन्तन एवं भावनाओं से चित्त में समाधि सुदृढ़ होती है। संसार की अनित्यता, अशरणता का चिन्तन संथारे की शय्या पर लेटे हुए भी करना चाहिये। वह साधक चिन्तन करता है-

   एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसणसंजुओ।
   सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा॥ -महाप्रत्याख्यान, गाथा 16

   ज्ञान एवं दर्शन से युक्त शाश्वत आत्मा मेरी है, शेष सब वस्तुएँ संयोग लक्षण वाली हैं तथा बाहरी हैं।
8. **पंच शरण-** अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए अन्त में साधक पंच पदों की शरण ग्रहण करता है। वे पंच पद हैं- अरिहन्त, सिद्ध, साधु, श्रुत और धर्म। इनकी शरण में जाने से आत्मशक्ति में वृद्धि होती है।

-डॉ. धर्मचन्द जैन

शोधालेख

सल्लेखना : मृत्यु महोत्सव

डॉ. राजकुमार छाबड़ा

प्रस्तुत आलेख में दिगम्बर परम्परा के ग्रंथों का विशेष उपयोग हुआ है, अतः श्वेताम्बर मान्यता से कहीं भेद परिलक्षित हो सकता है। जैन परम्परा में 'संलेखना' (सम्+लेखना=सम्यक् लेखना (कृशता) एवं 'सल्लेखना' (सत्+लेखना=सही प्रकार से लेखना) दोनों शब्दों का प्रयोग हुआ है। श्वेताम्बर ग्रंथों में प्राय: 'संलेखना' एवं दिगम्बर परम्परा में 'सल्लेखना' शब्द दृष्टिगोचर होता है-**सम्पादक**

जैन दार्शनिकों ने प्रत्येक साधक के लिए अर्थात् प्रत्येक व्रती के लिए चाहे वह श्रावक-श्राविका हो या श्रमण-श्रमणी, मरणकाल में सल्लेखना या समाधिमरण ग्रहण करने का विधान किया है। यह विधान परामर्श के रूप में है अर्थात् साधक को स्वेच्छा से प्रीतिपूर्वक जीवन का अन्त निकट जान लेने पर सल्लेखना ग्रहण करनी चाहिए।[1]

प्रत्येक जीवन का अन्त होता है, अर्थात् मृत्यु अवश्यम्भावी है। हम मृत्यु से मुक्त नहीं हो सकते जब तक कि हम कर्मबन्धनों से पूर्णरूप से मुक्त नहीं हो जायें। मृत्यु से मुक्त नहीं होने पर भी हम मृत्यु के भय से मुक्त हो सकते हैं। सामान्यत: प्रत्येक व्यक्ति मृत्यु के भय से ग्रस्त होता है, परन्तु विचारवान मनुष्य इस भय से मुक्त होता है।[2]

कायर भी मृत्यु को प्राप्त होता है और धैर्यवान भी मृत्यु को प्राप्त होता है। परन्तु दोनों मरणों के परिणामों में अन्तर होता है। प्रथम प्रकार की संक्लेश परिणाम पूर्वक हुई मृत्यु का फल दुर्गति है, जबकि शान्तपरिणाम पूर्वक हुई मृत्यु का फल सुगति है। अत: धीरता और समतापूर्वक मृत्यु को प्राप्त होना ही उत्तम है।[3]

जैन आचार मीमांसा के प्रत्येक ग्रंथ में, श्रावकाचार और श्रमणाचार सम्बन्धी ग्रंथों में-सल्लेखना का प्रतिपादन किया गया है। जैन संस्कृति में इस साधना के सैद्धान्तिक प्रतिपादन के साथ इस साधना को अंगीकार करने वाले व्यक्तियों के पौराणिक युग, ऐतिहासिक एवं वर्तमान काल तक के प्रमाण प्राप्त होते हैं। सबसे प्राचीन पौराणिक प्रमाण प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव का है जिन्होंने दस भव पूर्व राजा महाबल की पर्याय में अवधिज्ञानी मुनिराज से परोक्षरूप में एक माह आयु शेष रहना जानकर सल्लेखना ग्रहण कर देव पर्याय प्राप्त की थी।[4]

जब हम ऐतिहासिक युग में आते हैं, तो हमारा ध्यान पंचम श्रुतकेवली भद्रबाहु की ओर जाता है। जैन स्रोतों के अनुसार उन्होंने अन्तिम समय कर्नाटक प्रान्त के श्रवणबेलगोला स्थान पर कटवप्र पर्वत (चन्द्रगिरि पर्वत) की गुफा में सल्लेखना ग्रहण की थी और उस समय सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य ने श्रमण दीक्षा ग्रहण कर उनकी वैयावृत्य की थी। मध्य युग में कर्नाटक प्रान्त में होयसल राज्य स्थापित हुआ था, जिसमें अनेक विद्याओं और कलाओं में कुशल एक महारानी शान्तल देवी हुई, जिनके स्वर्गगमन के उपरान्त उनकी माँ माचिकब्बे ने बेलगोल में एक माह के अनशन-व्रतपूर्वक सल्लेखना ग्रहण कर देहत्याग किया। इसका उल्लेख चन्द्रगिरि पर्वत के एक शिलालेख से प्राप्त होता है।

कई कारणों से साधक सल्लेखना धारण नहीं कर पाता। परन्तु उसका 'समाधिमरण हो' यह भावना उसे सदैव होती है। वर्तमान काल में आचार्य शान्तिसागरजी महाराज (1872-1955) की सल्लेखना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और प्रेरणादायक है। उन्होंने कुन्थलगिरि (महाराष्ट्र) तीर्थ स्थान पर 14 अगस्त 1955 को सल्लेखना ग्रहण की और 7 सितम्बर तक दिन में केवल एक बार जल ग्रहण किया और तदनन्तर जल का भी त्याग करके 18 सितम्बर 1955 के प्रात:काल में ध्यानावस्था में देहत्याग किया।[5]

जैन संस्कृति में प्रचलित सल्लेखना-साधना की युक्तिसंगतता और गरिमा से कोई भी विवेकी पुरुष प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यही कारण है कि आचार्य विनोबा भावे ने मरणान्त समय समस्त अन्न-जल और औषधि का त्याग कर समाधि पूर्वक मृत्यु का वरण किया था।

साधक को मरणान्त काल में प्रीतिपूर्वक सल्लेखना ग्रहण करनी चाहिए।

मरणान्त काल को स्पष्ट करते हुए आचार्य समन्तभद्र कहते हैं:-

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतिकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः।।

-रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक-122

अर्थ- जिसके मिटने का उपाय नहीं दिखता हो, ऐसा उपसर्ग होने पर, दुर्भिक्ष पड़ने पर, वृद्धावस्था आ जाने पर, असाध्य रोग होने पर, धर्म की रक्षा के लिए जो शरीर का त्याग किया जाता है, उसे गणधरदेव सल्लेखना कहते हैं।[6]

इस श्लोक पर वचनिका लिखते हुए जयपुर के पण्डित सदासुखदासजी कासलीवाल (1795-1866) सल्लेखना के औचित्य को स्पष्ट करते हैं। उनका अभिप्राय है कि विवेकी पुरुष जीवन भर देह की संभाल करता हुआ रत्नत्रय धर्म की आराधना करता है। लेकिन, जब धर्म से अविरुद्ध देह की रक्षा संभव दिखाई नहीं देती है, तो विवेकी पुरुष देह के प्रति ममतारहित होता हुआ आत्म-स्वभावरूप रत्नत्रय धर्म की रक्षा करता है और देह का परित्याग कर मृत्यु को घटित होने देता है। वे यह स्पष्ट करते हैं कि इस जीव ने अनन्तबार हर प्रकार की देह प्राप्त की है, परन्तु आत्मा का कल्याण करने वाला रत्नत्रय धर्म अत्यन्त दुर्लभ है, अत: साधक को मरणान्त समय में हर प्रकार से धर्म की रक्षा में उद्यमवान् होना चाहिए।

जो देहात्मवादी है, या अनात्मवादी है, या आत्मा को एक निर्गुण सत्ता मानता है वह सल्लेखना के औचित्य को स्वीकार नहीं कर सकता। लेकिन आत्मवाद, लोकवाद, कर्मवाद और क्रियावाद पर आधारित तत्त्वमीमांसा में सल्लेखना की अवधारणा युक्तिसंगत है।[7]

प्रत्येक मानव शरीर में बद्ध होता हुआ भी, शरीर से भिन्न एक आत्मा है, एक जीव है, एक पुरुष (Person) है; वह ज्ञाता है, कर्ता है और भोक्ता है।[8] तत्त्वज्ञान और संयम के अभाव में वह मोह, रागद्वेषादि रूप में लीन रहता है जो उसके लिए अत्यन्त क्लेशदायक है। मिथ्यादृष्टि पुरुष न केवल स्वयं क्लेश को प्राप्त होता है, अपितु परन्तु वह अपने अज्ञान के कारण अन्य जीवों के क्लेश में भी निमित्त होता है। अत: प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है कि वह भेदविज्ञान प्रकट करके हिंसादि पापों का आंशिक या पूर्णरूपेण त्याग करके अणुव्रतों या महाव्रतों को अंगीकार करे। जैन दार्शनिकों के अनुसार यही समीचीन धर्म अर्थात् रत्नत्रय धर्म है जो समस्त कर्मों का नाश करने वाला और संसार के दु:खों को मिटाकर जीव को उत्तम सुखों (अभ्युदय और नि:श्रेयस) को प्रदान करने वाला है।[9]

सल्लेखना दो प्रकार की है (अर्थात् इसके दो अविनाभावी अंग हैं)-आभ्यन्तर और बाह्य। कषायों को कृश करना आभ्यन्तर सल्लेखना है और शरीर को कृश करना बाह्य सल्लेखना है।[10] कषायों अर्थात् संक्लेश परिणामों को कृश करते हुए चित्त की विशुद्धि और विशुद्धि में उत्तरोत्तर वृद्धि होना धर्म, अध्यात्म या साधना है। साधक अपने जीवनकाल में शरीर की धर्म से अविरुद्ध यथायोग्य संभाल करता हुआ विशुद्धि मार्ग में अग्रसर होने का सतत प्रयत्न करता है। लेकिन, जब मरणान्त काल आता है और शरीर धर्म का प्रतियोगी हो जाता है, तो विवेकी पुरुष कषायों को कृश करने के प्रति विशेष जागरूक होने के साथ क्रमश: अन्न-जल का निरोध करके शरीर को भी कृश करता है

जिससे शरीर उपद्रवहीन हो जाता है और साधक को निश्चल ध्यान और समाधि की सिद्धि होती है। इस प्रकार, यह सिद्ध होता है कि सल्लेखना के आभ्यन्तर और बाह्य दोनों पक्ष अविनाभावी और युक्तिसंगत हैं।

सल्लेखना आत्मघात नहीं है। आचार्य पूज्यपाद स्पष्ट करते हैं कि राग, द्वेष और मोह से आविष्ट होकर शस्त्र, विष आदि उपकरणों की सहायता से अपना घात करना आत्मघात है। लेकिन सल्लेखना ग्रहण करने वाले पुरुष के मोह, राग व द्वेष का अभाव है, अतः इस क्रिया को आत्मघात नहीं कहा जा सकता।[11] यही नहीं, आचार्य अमृतचन्द्र सल्लेखना को अहिंसा में गर्भित करते हैं। उनका कहना है कि सल्लेखना में हिंसा के हेतुभूत कषायभावों का अभाव होता है, अतः यह अहिंसा है।[13]

सल्लेखना पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता। यह तो युक्तिसंगत है। प्रश्न है कि आत्मधर्म क्या है? इसका उत्तर है कि आत्मा का आत्मा के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अतः जब कोई व्यक्ति शरीरादि पर-पदार्थों में अहंकार-ममकार स्वरूप अपराध करता है, तो वह आस्रव और बन्ध को प्राप्त होता है। आत्मा के निरपराध होने पर उपाय अर्थात् आत्मधर्म को साररूप में स्पष्ट करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि व्यक्ति यह निश्चय और तदनुरूप परिणति करे कि ज्ञानदर्शन लक्षणवाला शाश्वत एक आत्मा मेरा है, शेष सब संयोगलक्षण वाले भाव मुझसे बाह्य हैं।[13]

व्यक्ति का प्रथम पुरुषार्थ धर्म है और उसका गौरव इसमें है कि उसकी लोकयात्रा धर्म की मर्यादा में संपन्न हो। जिस व्यक्ति ने जीवन में धर्म रसायन का पान किया है, वह अन्तकाल में इससे विमुख कैसे हो सकता है? उसकी यह सतत भावना रहती है कि उसका सल्लेखनापूर्वक पण्डितमरण हो।[14] जिसने धर्म को अंगीकार किया है वह मृत्यु काल में भी धर्म से नहीं डिगे, उस समय भी वह आत्मरक्षा में समर्थ हो-यही सल्लेखना है। मृत्यु का समय संकट का समय होता है। उस समय व्यक्ति डगमगा सकता है; शोक, भय और मोह से ग्रस्त हो सकता है। अतः यह आवश्यक है कि व्यक्ति इन शत्रुओं के प्रति विशेष जागरूक हो। यही कारण है कि जैन दार्शनिक सल्लेखना का विशेष विधान करते हैं।[15] पुनः आचार्य अमृतचन्द्र सल्लेखना के सम्बन्ध में एक विशेष बात करते हैं। उनका विचार है कि यह अकेली सल्लेखना ही पुरुष को भवान्तर में धर्म अर्थात् आत्मविशुद्धि और आत्मवैभव साथ ले जाने में समर्थ बनाती है।[16]

जैन दार्शनिक सल्लेखना का समर्थन दृष्टांत पूर्वक भी करते हैं।[17] आचार्य पूज्यपाद कहते हैं कि जैसे कोई व्यापारी क्रय-विक्रय योग्य वस्तुओं का अपने घर में संचय करता है। अब, यदि घर में आग लग जाये तो वह पहले सब प्रकार से उसे बुझाने की कोशिश करता है। लेकिन, यदि आग बुझाना अशक्य होता है, तो वह घर की चिन्ता छोड़कर अपनी वस्तुओं की रक्षा करता है। इसी प्रकार व्रत और शील के संचय में तत्पर गृहस्थ जीवन का अन्त नहीं चाहता। अब, यदि जीवन संकटग्रस्त होता है, तो वह उस संकट को दूर करने का उपाय करता है। लेकिन, यदि वह इसमें असमर्थ है, तो वह अपने गुणों की रक्षा करता है।[18] यही सल्लेखना है। एक दूसरा दृष्टान्त योद्धा का दिया गया है। जैसे, कोई राजपुत्र प्रतिदिन शस्त्राभ्यास करता है, तो वह शत्रुओं के आक्रमण करने पर युद्ध में विजय को प्राप्त होता है, उसी प्रकार समभावी साधु प्रतिदिन ध्यान का अभ्यास करता है, जिससे वह मरण काल में भी ध्यान करने में समर्थ हो जाता है। यही सल्लेखना है।[19]

सल्लेखना अंगीकर्त्ता श्रावक को साधक और श्रमण को क्षपक कहा जाता है। सामान्यतः सल्लेखना की अवधारणा एक ही है। किन्तु पात्रभेद से इसे चरितार्थ करने की प्रक्रियाओं में अन्तर सम्भव है। आचार्य समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार के षष्ठ परिच्छेद (श्लोक 122-135) में साधक की सल्लेखना का सुन्दर विवेचन किया है,[20] जिसे संक्षेप में इस प्रकार से कहा जा सकता है-

1. जीवन में व्रत और तप के अभ्यास की कसौटी अन्त में सल्लेखना की सिद्धि होना है।

2. साधक राग, द्वेष और परिग्रह का त्याग करके शुद्ध मन से कुटुम्बीजनों और परिजनों से क्षमा मांगे और स्वयं भी उनके अपराधों को क्षमा करें।
3. साधक जीवन में मन, वचन और काय तथा कृत, कारित और अनुमोदन से किये गये समस्त अपराधों की आलोचना करें और महाव्रतों को धारण करें।
4. साधक शोक, भय और विषाद को त्याग कर, अपने बल और उत्साह को बढ़ाकर शास्त्र-स्वाध्याय स्वरूप अमृत से अपने मन को प्रसन्न करें।
5. क्रमश: अन्न, दूध, छाछ, कांजी और गर्म जल का सेवन करता हुआ अन्त में उपवास ग्रहण करे, व्रतों को पूर्ण यत्न से पाले और नमस्कार मंत्र का स्मरण करता हुआ देह को छोड़े।
6. साधक को सल्लेखना के पांच अतिचारों से बचना चाहिए। **जीविताशंसा–** अधिक जीने की चाह। **मरणाशंसा–** जल्दी मरने की चाह। **भय–** किसी भी प्रकार का भय। **मित्रस्मृति–** मित्रों को याद करना। **निदान–** परलोक में भोगों की इच्छा करना।
7. आचार्य ने साधक को श्लोक 130 में 'पीतधर्मा' विशेषण दिया है। इसका अभिप्राय है कि जिस साधक ने विवेक पूर्वक वस्तु स्वरूप जानकर रत्नत्रय को अंगीकार किया है तथा सद्धर्म रसायन का पान किया है वह मृत्यु के भय से और मृत्यु काल में उत्पन्न होने वाली समस्त पीड़ाओं से पार हो जाता है। यह पारमिता शास्त्र है जो साधक को नि:श्रेयस तक प्रदान करने में समर्थ है।
8. अंत में आचार्य मुक्त जीव और मोक्ष सुख का वर्णन करते हैं।
9. यद्यपि सच्ची साधना निष्काम और नि:काक्षित होती है, किन्तु यह निष्फल नहीं होती। उसका फल नियम से अभ्युदय और नि:श्रेयस है। अत: आचार्य श्लोक 135 में अभ्यदुय का भी उल्लेख करते हैं।[21]

साधक मृत्यु के समय प्रीतिपूर्वक सल्लेखना ग्रहण करता है अर्थात् वह मृत्यु को मृत्यु-महोत्सव में रूपान्तरित कर देता है। पं. सदासुखजी सल्लेखना अधिकार की वचनिका में अज्ञातकर्तृक 18 श्लोकों में निबद्ध 'मृत्यु-महोत्सव पाठ' को समाविष्ट कर उस पर टीका करते हैं। वहाँ कहा गया है कि जिसकी संसार में आसक्ति है उसे ही मृत्यु से भय होता है, लेकिन जो ज्ञान और वैराग्य संपन्न है वह मृत्यु के भय से मुक्त होता है। साधक के लिए मृत्यु मृत्यु-महोत्सव है क्योंकि मृत्यु ज्ञानी को जीर्ण-शीर्ण कृतघ्न देह से छुड़ाकर उत्तम देह प्रदान कर देती है जो जीव के प्रति उपकार में समर्थ होती हैं। अत: ज्ञानी को कोई शोक नहीं है, भय नहीं है, मोह नहीं है। वह वस्तु स्वरूप को ठीक-ठीक जानता है, आत्मा, शरीर और लोक के स्वभाव को ठीक-ठीक जानता है, अत: ज्ञानी को मोह नहीं होता है। पं. बनारसीदासजी (17वीं शती) समयसार नाटक में कहते हैं:

वस्तु विचारत ध्यावतैं, मन पावै विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभौ याकौ नाम।।

-उत्थानिका, दोहा-17

सल्लेखना एक दार्शनिक विचार, भावना और अभ्यास है। यह वीतराग विज्ञान है, ज्ञान-ध्यान-भक्ति का समन्वय है। प्राचीन काल से वर्तमान काल तक के जैन चिन्तकों ने सल्लेखना की भावना और अभ्यास को स्पष्ट करने का स्तुत्य श्रम किया है।[22] यही नहीं, समाज में यह अनुष्ठान प्राचीन काल से लेकर आज तक अक्षुण्णरूप से संपन्न होता रहा है। कोई भी निष्पक्ष परीक्षक समय-समय पर होने वाले इस आत्मयज्ञ या आत्मपूजा का निरीक्षण और परीक्षा कर सकता है।

जैन दार्शनिकों का यही मन्तव्य है कि इस जीव ने देहात्मवादी होकर अनन्त कुमरण किये हैं। अब अवसर प्राप्त हुआ है कि वह भेदविज्ञान पूर्वक पण्डितमरण को प्राप्त करे ताकि संसार परिभ्रमण का अन्त निकट आ सके। यदि मरण समय शरीर जीव को छोड़ता है, तो यह कुमरण है। यदि मरण समय जीव शरीर को छोड़ता है, तो यह पण्डितमरण है। मृत्यु समय विषादादि होना कुमरण है, और ज्ञान, साहस, समय, संयम, समता, निःकषायता और प्रसन्नचित्तता का होना पण्डितमरण है। एक साधक या क्षपक का शरीर मुरझाया हुआ हो सकता है, परन्तु उसकी आत्मा ज्ञान, बल, साहस, संयम और प्रसन्नता से भरपूर होती है। साधक के धैर्य और समता को समझने के लिए प्लेटो द्वारा फीडो के माध्यम से सुकरात के अन्त समय के सम्बन्ध में दिया गया निम्नलिखित वक्तव्य द्रष्टव्य है :

"It never occurred to me to feel sorry for him as.....expected me to feel at the deathbed of a very dear friend. The master seemed quite happy......., both in his manner and in what he said; met his death so fearlessly and nobly I could not help feeling that even on his way to the other world he would be under the providence of God, and that when he arrived there all would be well with him, if it ever has been with anybody.[23]

(फीडो, 58 ई-59 ए)

इस लेख में सल्लेखना की अवधारणा और उसके औचित्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। लेकिन सल्लेखना अनुष्ठान को समझने के लिए सल्लेखना भावना का विवेचन भी अपेक्षित है। यह यहाँ सम्भव नहीं है। इसके लिए पं. गुमानीरामजी लिखित ''समाधि-मरण स्वरूप''[24] आदि मूल स्रोत द्रष्टव्य हैं।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1– क्या सल्लेखना विधि केवल जैन साधक के लिए ही प्रासंगिक है या सामान्यजन भी इससे लाभान्वित हो सकते हैं?

उत्तर– यह जैन साधक को अत्यन्त प्रिय है, लेकिन अन्य दार्शनिक और सामान्य पुरुष भी इसे अंगीकार कर सकते हैं। सामान्य बोध के स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता अनुभव करता है। तब, मृत्यु काल में शोक और भय के स्थान पर असाध्य पीड़ा को ज्ञान बल से जीत कर समता धारण करना ही श्रेयस्कर है। उत्तराध्ययन सूत्र एवं श्रीमद्भगवद्गीता का कथन ध्यातव्य है कि आत्मा (अर्थात् व्यक्ति) स्वयं अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है, और प्रत्येक आत्मा (व्यक्ति) को स्वयं अपना उद्धार करना चाहिए। अतः इस सल्लेखना विधि द्वारा ही अन्तकाल में व्यक्ति स्वयं को आत्माशुद्धि की ओर ले जा सकता है।

प्रश्न 2– सल्लेखना असह्य पीड़ा का निवारण नहीं करती। अतः इसके निवारणार्थ इच्छा-मृत्यु के विकल्प को वैधता प्राप्त होनी चाहिए।

उत्तर– इच्छा करना निम्नस्तरीय चेतना का द्योतक है, चाहे वह मृत्यु की इच्छा ही हो। अतः पीड़ा और कष्ट चाहे कितना ही असह्य हो, उसकी विपश्यना करना ही मानवोचित आचरण है। इच्छा-मृत्यु अन्य पुरुष के संबंध में भी उचित नहीं है। पुनर्जन्म की मान्यतानुसार क्या असह्य वेदना के कारण किसी को इच्छा- मृत्यु प्रदान कर हमने उसे इससे भी अधिक विषम कर्मों या परिस्थितियों को भोगने के लिए बाध्य नहीं कर दिया?

पुनर्जन्म की अवधारणा के साथ कर्म सिद्धान्त भी जुड़ा हुआ है, तदनुसार देह के परिवर्तन मात्र से जीव के असातावेदनीय कर्म का उदय समाप्त नहीं होगा। वह तो अपनी स्थिति पूर्ण करके समाप्त होगा। हाँ, समता परिणामों से उसका अपकर्षण और संक्रमण संभव है जिसमें इच्छा-मृत्यु बाधक है, क्योंकि यह

विषम भाव है। सल्लेखना जीवन का अंत करना नहीं है। यह आत्म चेतना की घटना है। यह प्राकृतिक है। इच्छा-मृत्यु जीवन का अंत करना है। यह अप्राकृतिक है।[25]

प्रश्न 3- क्या सँथारा से मोक्ष की प्राप्ति होती है?

उत्तर- सँथारा मोक्ष का साक्षात् कारण नहीं है, किन्तु परम्परागत कारण कहा जा सकता है। जो सँथारा ग्रहण करता है, उसे अवश्यमेव उसी भव से मोक्ष की प्राप्ति होती हो, ऐसा निश्चित नहीं है। सँथारा रत्नत्रय धर्म की रक्षार्थ ग्रहण किया जाता है। इससे आत्मविशुद्धि और कर्मनिर्जरा होती है और साधक या क्षपक को सुगति की प्राप्ति होती है। यह संभव है कि संथारा में क्षपक जीव क्षपकश्रेणी में आरोहण करके रत्नत्रय की पूर्णता को प्राप्त करके उसी भव में अरिहन्त और सिद्ध पद को पा जावे अर्थात् मुक्त हो जावे, परन्तु, यह सामान्य नियम नहीं है। यद्यपि यह नियम अवश्य है कि जिसका एक बार पण्डितमरण होता है, वह कुछ ही भवों में अवश्य जन्म-मरण के चक्र से परिमुक्त हो जाता है।

प्रश्न 4- क्या सल्लेखना दण्डनीय अपराध है, जैसा कि माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर ने अपने निर्णय D.B. Civil Writ Petition No. 7414/2006 (PIL) दिनांक 10-08-2015 में माना है। (देखें - दैनिक भास्कर, जोधपुर, दिनांक 11 अगस्त, 2015)

समाधान- इस निर्णय पर देश के उच्चतम न्यायालय ने 31 अगस्त 2015 को स्थगन आदेश पारित कर दिया है।[26] (देखें- दैनिक भास्कर, जोधपुर 01 सितम्बर, 2015) अब, वहाँ इसका फैसला होना है।

समन्तभद्र, हरिभद्र आदि सभी जैन दार्शनिक यह दावा करते रहे हैं कि जैनधर्म और जैनदर्शन युक्त्यनुशासन है। अत: जैन समाज को तर्क से हारी बाजी को तर्क से ही जीतना चाहिए। उन्हें सिद्धान्तत: धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार की दुहाई नहीं देना चाहिए।

उच्च न्यायालय में बचाव पक्ष ने सल्लेखना को मोक्ष से जोड़ने की गलती की थी और संभवत: इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। यहाँ मैं यह कहना चाहूँगा कि माननीय न्यायालय को केवल पक्ष-विपक्ष में बहस के आधार पर ही इतने गम्भीर विषय पर अपना फैसला नहीं देना चाहिए, उन्हें स्वयं भी युक्तिपूर्वक निर्णय करना चाहिए। जब न्यायालय किसी विषय का स्वविवेक से प्रसंज्ञान ले सकता है, तो उसे इतने गम्भीर विषय पर निर्णय देते समय स्वविवेक का भी निष्पक्ष रूप से पूर्ण उपयोग करना चाहिए।

यहाँ विचारणीय यह है कि दण्डनीय अपराधों का मूल कारण क्या है? इसका उत्तर होगा-क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय भाव और हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह ये पाँच पाप भाव और उनसे निष्पन्न आचरण। सल्लेखना में इन दोनों का अभाव है। तब, कोई कानून इसे दण्डनीय अपराध कैसे कह सकता है?

साधक या क्षपक विविक्त शय्यासन करता है, वह सार्वजनिक जीवन में रंचमात्र भी हस्तक्षेप नहीं करता। सार्वजनिक जीवन की मर्यादा उल्लंघन का भी यहाँ कोई प्रश्न नहीं है।

माननीय उच्च न्यायालय ने इसे आत्मघात या आत्मघात के सदृश माना है। प्रश्न उठता है कि क्या यह निर्णय उचित है? क्या सल्लेखना आत्मघात या उसके सदृश है? क्या सल्लेखना आत्मघात में सहायक होने के कारण दण्डनीय अपराध है?

आचार्य पूज्यपाद, अमृतचन्द्र आदि इसका खण्डन करते हैं। उनका कहना है कि हिंसक परिणामों से, क्रोधादि से प्रेरित होकर विष, शस्त्र, आदि उपकरणों की मदद से अथवा अन्य भी अनेक प्रकारों से जैसे- आग में जल जाना, पर्वत से गिर जाना, फांसी लगा लेना, आदि प्रकारों से स्वयं के प्राणों का

उच्छेद करना आत्मघात है। परन्तु, सल्लेखना में स्थित पुरुष इस प्रकार के परिणामों और आचरण में कदापि लिप्त नहीं होता। तब, इसे आत्मघात या उसके सदृश या उसमें सहायक कैसे कहा जा सकता है? क्या केवल अन्न, जल और औषधि का त्याग कर देने मात्र से साधक दण्डनीय हो जाता है?

क्या जब डॉक्टरों ने जवाब दे दिया है, उस मरणान्त व्यक्ति को अन्न, जल और औषधि ग्रहण कराकर बचाया जा सकता है? यदि नहीं, तो क्या इस समय में भी अन्न, जल और औषधि देते रहना, नहीं देने की अपेक्षा श्रेयस्कर है और यदि इसका कोई त्याग करता है तो वह दण्डनीय है? यदि इसका उत्तर हाँ है, तो इसका अर्थ है कि हमारे देश का कानून तप और संयम पर प्रतिबन्ध लगाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारे देश का कानून सामान्य अवस्था में भी किसी व्यक्ति द्वारा तप और संयम का अनुष्ठान करने को दण्डनीय कृत्य स्वीकार करता है।

क्या यह सभ्यता और संस्कृति का संघर्ष नहीं है? यहाँ इस तर्क पर विचार करना आवश्यक है कि अन्न-जल और औषधि मात्र का त्याग करना आत्मघात या इसमें सहायक है- यह तो विवादास्पद है, लेकिन अन्न-जलादि का ग्रहण करना प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जीवघात नियम से है, क्योंकि यह सामग्री प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से प्राप्त होती है और प्राकृतिक संसाधन भी सचेतन हैं यह तथ्य प्रसिद्ध है। अत: कम-से-कम जीवन के अंत में तो अन्न-जल-औषधि-आदि का ''अहिंसा परमो धर्म:'' या ''सर्वभूतहिते रता:'' को कृत्स्नरूप से चरितार्थ करने के लिए संपूर्णत: त्याग करने को वैधता प्राप्त होनी चाहिए।

टिप्पणियाँ

1. वाचक उमास्वामी (उमास्वाति) 'सेविता' क्रिया के स्थान पर 'जोषिता' क्रिया का प्रयोग करके यह स्पष्ट करते हैं कि व्रती मारणान्तिक सल्लेखना का प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाला होता है। सूत्र इस प्रकार है:- *'मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता।'* -तत्त्वार्थ सूत्र अ. 7 सू. 22
2. सम्यग्दृष्टि जीव 1. इहलोक भय, 2. परलोक भय, 3. मरण भय, 4. वेदना भय, 5. अनरक्षा भय, 6. अगुप्ति भय और 7. अकस्मात् भय, इन सात भयों से मुक्त होता है। देखें -
   (1) आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार गा. 228। इस गाथा पर आचार्य अमृतचन्द्र विरचित कलश 155-161।
   (2) आचार्य समन्तभद्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक 11 पर पण्डित सदासुख कासलीवाल कृत वचनिका।
3. श्री जिनेन्द्र वर्णी, समणसुत्तं :
   धीरेण वि मरियव्वं, काउरिसेण वि अवस्सं मरियव्वं।
   तम्हा अवस्समरणे, वरं खु धीरत्तणे मरिउं।।-गाथा 569
4. आचार्य जिनसेन, आदिपुराण भाग-1, पंचम पर्व, श्लोक 221-254 पृ. 113-116, भारतीय ज्ञानपीठ, सातवाँ संस्करण, 2000। राजा महाबल ने अपने मंत्री के माध्यम से अवधिज्ञानी मुनिराज की भविष्वाणी जानकर पहले अष्टाह्निका पर्व मनाया और उसके बाद बाईस दिन की प्रायोपगमन सल्लेखना ग्रहण कर द्वितीय स्वर्ग में देव पर्याय प्राप्त की।
5. देखें-(1) पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर, चारित्र चक्रवर्ती, अ. 13, सल्लेखना, पृ. 304-350 श्री आचार्य शान्तिसागर स्मारक, श्री 1008 आदिनाथ बाहुबली दि. जैन मन्दिर ट्रस्ट, बोरिवली, (बम्बई), द्वितीय आवृत्ति, 1972
   (2) P.S. Jaini, The Jaina Path of Purification, p.1, Motilal Banarsidass. Delhi, 2001
6. इसके अतिरिक्त व्यक्ति के मरण की निकटता के ज्ञापक अनेक चिह्नों अर्थात् रिष्टों का उल्लेख भद्रबाहु संहिता आदि ग्रंथों से प्राप्त होता है।
   देखें-पं. हीरालाल शास्त्री (सं. व अनु.), श्रावकाचार संग्रह, भाग-4, प्रस्तावना, पृ. 106-107 प्र. जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, 1979

7. इन चार सिद्धान्तों का उल्लेख हमें आचारांग में प्राप्त होता है। देखें-डॉ. कमलचन्द सोगाणी (सं.), आचारांग चयनिका : से आयावादी लोगावादी कम्मावादी किरियावादी। सूत्र-3 प्र. प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर द्वितीय संस्करण, 1987।

8. यदि आत्मा मोक्ष को प्राप्त होता है, तो मुक्त आत्मा भी एक पुरुष (Person) है और मुक्त जीव भी ज्ञाता है, कर्ता है और भोक्ता है। देखें 1. आचार्य कुन्दकुन्द कृत प्रवचनसार गा. 123-124 और इन पर आचार्य अमृतचन्द्र विरचित तत्त्वप्रदीपिका टीका। 2. आ. नेमिचन्द्र विरचित बृहद् द्रव्यसंग्रह गा. 2, 4-6, 8 व 9 और इन पर श्री ब्रह्मदेव विरचित वृत्ति।

9. रत्नकरण्ड श्रावकाचार :
देशयामि समीचीनं, धर्मं कर्म -निबर्हणम्।
संसारदुखतः सत्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे ।। 2 ।।

10. समणसुत्तं :
संल्लेहणा य दुविहा, अब्भिंतरिया य बाहिरा चेव।
अब्भिंतरिया कसाए, बाहिरिया होइ य सरीरे ।। 578 ।।

11. सर्वार्थसिद्धि, अ. 7 सूत्र 22 की वृत्ति ।

12. पुरुषार्थसिद्धि- उपाय :
नीयन्तेऽत्र कषाया हिंसाया हेतवो यतस्तनुताम्।
सल्लेखनामपि ततः प्राहुरहिंसाप्रसिद्ध्यर्थम् ।। 179 ।।

13. नियमसार :
एगो मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ।। 102 ।।

14. ज्ञानी पुरुष प्रतिदिन यह भावना (विचार) करता है कि-
दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं।
समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।।
अर्थात्-मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनगुण सम्पत्ति (अनन्त चतुष्टय) की प्राप्ति हो।

15. सिद्धान्त - निर्माण में संगतता (Consistency) और पर्याप्तता (Completeness) का होना अनिवार्य है। जैन दर्शन इन शर्तों को पूरा करता हुआ दिखाई देता है।

16. पुरुषार्थसिद्धि-उपाय :
इयमेकैव समर्था धर्मस्वं मे मया समं नेतुम्।
सततमिति भावनीया पश्चिमसल्लेखना भक्त्या ।। 175 ।।
अर्थ - यह एक मरण के अन्त में होने वाली सल्लेखना ही मेरे धर्मरूपी धन को मेरे साथ ले जाने में समर्थ है, इस प्रकार भक्ति सहित निरन्तर भावना करनी चाहिए।

17. एक दार्शनिक प्रणाली में दृष्टान्त के महत्त्व के संबंध में वात्स्यायन का कहना है कि दृष्टान्त के बल पर ही अनुमान और आगम प्रमाण अपने विषय की सिद्धि कर पाते हैं, इसके अभाव में नहीं।
''..........तदाश्रयावनुमानागमौ-तस्मिन् सति
स्यातामनुमानागमावसति च न स्याताम्।'' -न्यायभाष्य 1.1.1

18. देखें - सर्वार्थसिद्धि अ. 7 सूत्र 22 पर वृत्ति।

19. समणसुत्तं :
जह रायकुलपसूओ, जोग्गं णिच्चमवि कुणइ परिकम्मं।
तो जिदकरणो जुद्धे, कम्मसमत्थो भविस्सदि हि ।।

इय सामण्णं साधूवि, कुणदि णिच्चमवि जोगपरियम्मं।
तो जिदकरणो मरणे, ज्झाणसमत्थो भविस्सति ।। -गाथा 583-584

20. क्षपक की सल्लेखना के लिए आचार्य शिवार्य कृत 'भगवती आराधना' द्रष्टव्य है। सं. व अनु. पं. श्री कैलाशचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री। प्र. श्री जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, तृतीय आवृत्ति, 2006।
21. यहीं यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि अभ्युदय तो लौकिक सुख है और नि:श्रेयस वास्तविक सुख है, अत: एक ही धर्म दो विरोधी फलों को प्रदान करने वाला कैसे हो सकता है। जैन दार्शनिक इसका समाधान इस प्रकार करते हैं: 'धर्म के दो भेद हैं- निश्चय धर्म और व्यवहार धर्म। निश्चय रत्नत्रय तो संवर एवं निर्जरा का ही हेतु है, बन्ध का नहीं। परन्तु जब तक पारमार्थिक धर्म अपनी परिपूर्णता को प्राप्त नहीं होता, तब तक ज्ञानी के विकल्परूप प्रशस्त राग स्वरूप व्यवहार रत्नत्रय होता है। वह स्वर्गादि अभ्युदय का बन्ध कराने वाला होता है। यद्यपि व्यवहार रत्नत्रय उपचार से ही धर्म है, तो भी संग्रहनय से दोनों को एक मान कर यह प्रतिपादित किया जा सकता है कि जिससे अभ्युदय और नि:श्रेयस की सिद्धि होती है वह धर्म है। ऐसा कहने में कोई दोष नहीं है, क्योंकि ज्ञानी की मोक्षमार्ग-यात्रा के मध्य अभ्युदय नियम से पड़ाव के रूप में प्राप्त होता है।
22. द्रष्टव्य पं. गुमानीरामजीकृत 'समाधि-मरण स्वरूप', पं. भागचन्द्र छाजेड़ कृत सत्तास्वरूप के साथ संकलित। पृ 89-109 अनु, जतीशचन्द्र जैन, प्र. श्री दि. जैन सत् साहित्य प्रसारक मंडल, खण्डवा, वी.नि.सं. 2503।
23. यहाँ जिस "Providence of God" विचार का उल्लेख हुआ है उसे जैन दार्शनिक स्वीकार नहीं करते। उनका स्पष्ट दृढ़ मत है कि यह लोक अनादि अनन्त अकृत्रिम है और वस्तु स्वभाव में निहित प्राकृतिक नियमों से संचालित है। यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि जैन दार्शनिक ज्ञानी के मरणोपरान्त अभ्युदय के प्रति नि:शंकित हैं, जबकि प्लेटो को संशय है।
24. देखे टिप्पण संख्या 22।
25. प्रो. श्रीमती कुसुम जैन, जैव-नीतिशास्त्र की आधारभूत समस्याएँ, अध्याय 4, पृ. 107-149, दर्शनशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, सन् 2005
26. देखें- दैनिक भास्कर, जोधपुर, दिनाँक 1 सितम्बर 2005

-दर्शनशास्त्र विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.) मो : 9828077984

मरण वरण है नव-जीवन का

डॉ. नरेन्द्र भानावत

मरण वरण है नव जीवन का।
सच्चा ज्ञानी जिसने समझा, काया नश्वर, आत्म चिरन्तन।
भोगों से ममता हट जाती, समता में रमता है चेतन।
मरण चरण है सिद्धि-सदन का, मरण वरण है नव जीवन का।।1।।
सच्चा साधक जो कर लेता, अपने पापों का प्रायश्चित्त।
सब जीवों से क्षमा मांगकर, क्षमादान कर होता पुलकित।
मरण स्मरण संस्कारी मन का, मरण वरण है नव जीवन का।।2।।
सघन तमिस्रा में चमका हो, जैसे कोई नखत सुनहला।
थाके मांदे को छू जाये, जैसे शक्ति, स्फूर्ति का रेला।
मरण कुसुम भव-नन्दन वन का, मरण वरण है नव जीवन का।।3।।
मरण नहीं यातना, यंत्रणा, आत्मदेव की पूजा-अर्चा।
जीर्ण वस्त्र तज, नव पट धारण, मंगल उत्सव, संचित ऊर्जा।
मरण करण ग्रन्थि-भेदन का, मरण वरण है नव जीवन का।।4।।

संथारा ग्रहण करने की विधि

श्रीमती रतन चोरडिया

संथारा ग्रहण करने के इच्छुक साधक को ऐसे स्थान का चयन करना चाहिये जहाँ खान-पान, भोग विलास के पदार्थ विद्यमान न हों। संसार-व्यवहार संबंधी शब्द एवं दृश्य सुनने व देखने में न आएं। जहाँ त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा की संभावना न हो। ऐसे स्थान की प्रमार्जना कर समभाव में स्थित होकर पूर्व या उत्तर की ओर मुख कर देव, गुरु भगवन्तों को सविधि वन्दन करें।

अहिंसा जिनका आचरण है, सत्य जिनका भगवान है, ब्रह्मचर्य जिनका व्रत है, अपरिग्रह जिनका आदर्श है, संयम जिनका लक्ष्य है, ऐसे साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाएँ वर्तमान में इस लोक में जहाँ भी हैं, मैं उन सबकी शरण ग्रहण करता हूँ, उन सभी को कोटि-कोटि वंदन करते हुए चार शरण स्वीकार करता हूँ। अरिहन्तों का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधु-साध्वियों का शरणा एवं केवली प्ररुपित दया धर्म का शरणा।

मैं जिनेश्वर देव, निर्ग्रन्थ गुरु तथा जिन धर्म को सत्य एवं संसार तारक मानता हूँ।

तत्पश्चात् चउवीसस्तव करे। गमनागमन व प्रतिलेखना में जो भी पाप लगा हो उसकी निवृत्ति के लिये इच्छाकारेणं का कायोत्सर्ग करे। पश्चात् लोगस्स का पाठ बोले। किसी भी प्रकार से जीवों की विराधना हुई हो तो तस्स 'मिच्छामि दुक्कडं' ऐसा कहे, पश्चात् दो बार नमोत्थुणं का पाठ बोले।

पश्चात् धर्मगुरु, धर्माचार्य और धर्मोपदेशक आचार्य जी महाराज को नमस्कार कर वन्दना करे। पूर्व में ग्रहण किये हुए सम्यक्त्व व व्रत नियमों में जो भी दोष लगे हों, उनको याद करके पंच परमेष्ठी भगवन्तों की साक्षी से निष्कपट भाव से आलोचना, निंदा व गर्हा करके मिच्छामि दुक्कडं देवे। माया, मिथ्यात्व व निदान इन तीनों शल्यों का सर्वथा त्यागकर अन्तःकरण को पूर्ण निर्मल बनाकर सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि अर्थात् हिंसा का सर्वथा त्याग करता हूँ। सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि-मृषावाद का सर्वथा त्याग करता हूँ। सव्वं अदिण्णादाणं पच्चक्खामि-सर्वथा अदत्तादान (चोरी) का त्याग करता हूँ। सव्वं मेहुणं पच्चक्खामि-मैथुन का सर्वथा त्याग करता हूँ। "सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि" परिग्रह का सर्वथा त्याग करता हूँ। "सव्वं कोहं माणं मायं लोहं पच्चक्खामि" अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ का सर्वथा त्याग करता हूँ। राग-दोसं कलहं अब्भक्खाणं पेसुन्नं परपरिवायं रइमरइं मायामोसं मिच्छादंसणसल्लं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामि अर्थात्-सब राग द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, पर-परिवाद, रति-अरति, मायामृषावाद, मिथ्यादर्शनशल्य और अकरणीय योगों का प्रत्याख्यान करता हूँ। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं जीवन पर्यन्त तीन करण तीन योग से, न करेमि, न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, मणसा, वयसा कायसा अर्थात् उक्त अठारह ही पापों का सेवन न करूँगा, न कराऊँगा और न करने वाले का अनुमोदन करूँगा, मन से, वचन से, काया से। इस तरह साधक अठारह पापों का त्याग करता है।

तत्पश्चात् सव्वं असणं, पाणं, खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि अर्थात् सर्वथा प्रकार से बिना किसी आगार के अन्न, पानी, सूखे मेवे, मुखवास का तथा सूंघने की वस्तु का, आंख में डालने के अंजन आदि का भी प्रत्याख्यान करता हूँ।

आहार का त्याग करने के पश्चात् निम्नलिखित पाठ का उच्चारण करके शरीर का भी प्रत्याख्यान कर दे-

जं पियं इमं सरीरं, इट्ठं, कंतं, पियं, मणुण्णं, मणाणं, धिज्जं विसासियं, सम्मयं, बहुमयं, अणुमयं, भंडकरंडगसमाणं, रयणकरंडगभूयं, माणं सीयं, माणं उण्हं, माणं खुहा, माणं पिवासा, माणं वाला, माणं चोरा, माणं दंसमसगा, माणं वाइयं पित्तियं, कप्फियं संभीमं सण्णिवाइयं विविहा रोगायंका परिसहा उवसग्गा, फासा फुसंतु एवं पि य णं चरमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं वोसिरामि। त्ति कट्टु, ऐसे शरीर को वोसिरा कर कालं अणवकंखमाणे विहरामि।

इस प्रकार संलेखनापूर्वक संथारा करने से जीने की इच्छा व मृत्यु का भय रूप दारुण दु:ख समाप्त हो जाता है। माता-पिता, भाई-बंधु व समस्त कुटुम्बी जनों से मोह संबंध टूट जाता है। समस्त पदार्थों की आसक्ति टूट जाती है। संथारे से महानिर्जरा होती है, जन्म-मरण के चक्र से मुक्त बन शाश्वत सुखों की प्राप्ति होती है।

-चोरडिया भवन, थार हैण्डलूम के सामने, गोल बिल्डिंग रोड, जोधपुर-342003 (राज.)

रत्नसंघ के सुदीर्घ संथारे

आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी म.सा. की स्थानकवासी जैन परम्परा में साधु-साध्वियों को वि.सं. 1921 से निम्नांकित संथारे आये हैं :-

वि.सं.1921 माघ कृष्णा 4 : श्री बुधमल जी म.सा. को केकीन्दड़ा में 27 दिन का संथारा।

वि.सं.1957 आषाढ शुक्ला 13 : महासती श्री सिन्धुजी म.सा. को जोधपुर में 59 दिवसीय संथारा ।

वि.सं. 1964 भाद्रपद शुक्ला 11 : तपस्वी श्री भगवानदास जी म.सा. को आहोर की हवेली, जोधपुर में 65 दिवसीय संथारा।

वि.सं.1985, श्रावण कृष्णा 13 : तपस्वी मुनिश्री सागरमलजी म.सा. को किशनगढ़ में 59 दिवसीय संथारा ।

वि.सं.1991, भाद्रपद शुक्ला 7 : महासती श्री सुगनकंवरजी म.सा. को महामन्दिर, जोधपुर में 52 दिवसीय संथारा ।

वि.सं.2032 फाल्गुन शुक्ला 8 : भजनानन्दी श्री माणकमुनि जी म.सा. को जोधपुर में 35 दिवसीय संथारा।

वि.सं. 2048 वैशाख शुक्ला 8 : आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमल जी म.सा. ने निमाज में तेरह दिवसीय तप-संथारे का आदर्श प्रस्तुत किया।

वि.सं.2052 मार्गशीर्ष कृष्णा 8 : क्रियोद्धारक भूमि भोपालगढ़ में ओजस्वी वक्ता श्री शुभेन्द्रमुनि जी म.सा. का 16 दिवसीय तप संथारा।

वि.सं.2056 मार्गशीर्ष कृष्णा 5 : अजमेर में महासती श्री सूरजकंवर जी म.सा. का ग्यारह दिवसीय चौविहार संथारा।

वि.सं. 2073 मार्गशीर्ष शुक्ला 7 : जोधपुर में शासनप्रभाविका-साध्वीप्रमुखा महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. का 16 दिवसीय संथारा।

-संकलन : श्री नौरतन मेहता, सह सम्पादक जिनवाणी

सामायिक उपकरण संघ कार्यालय में उपलब्ध

आपको सूचित करते हुए हर्ष है कि सामायिक उपकरण का सेट जिसमें दुपट्टी, चोलपट्टा, आसन, मुँहपत्ती, माला तथा प्रतिक्रमण की पुस्तक सम्मिलित है, संघ कार्यालय में लागत मूल्य से भी कम **रियायती दर पर 200/- रुपये** में उपलब्ध है। जोधपुर से बाहर पार्सल खर्च अतिरिक्त होगा।

-पूरणराज अबानी, महामंत्री, अ.भा.श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ

नारी-स्तम्भ

महासती मैनासुन्दरीजी : श्राविकाओं की प्रेरणा स्रोत

श्रीमती सुशीला बोहरा

जैन धर्म में नारी का स्थान सर्वोच्च है। उसे भगवती कहकर सम्मानित एवं संबोधित किया गया है। तप, त्याग, वैराग्य एवं संयम-साधना के क्षेत्र में वे हमेशा अग्रणी रही हैं। यहाँ तक कि तीर्थंकर जैसे सर्वोच्च पद को भी प्राप्त कर लिया। 19वें तीर्थंकर मल्ली भगवती इस बात की प्रमाण है। मैनासुन्दरी जी म.सा. रत्न संघ की एक देदीप्यमान महासती थी। 89 से अधिक साध्वी समुदाय की प्रमुखा रही। आपने राजस्थान की विस्तृत पदयात्रा ही नहीं की वरन् दुगर्म मार्ग, कठिन घाटियों और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों को लांघ कर चैन्नई, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मेवाड़, मध्यप्रदेश, मालवा, गुजरात आदि राज्यों की व्यापक पदयात्रा की तथा प्रवचनों के माध्यम से धर्म की पताका गांव गांव और नगर नगर में फहरायी। इसे देखकर आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज ने 01 जनवरी 1990 को आपको 'शासन प्रभाविका'' पद से विभूषित किया। ऐसी महासती के दर्शन, वन्दन का सौभाग्य अब हमें कभी नहीं मिल सकेगा। लेकिन रत्न संघ एवं श्राविकाओं के लिये हमेशा प्रकाश स्तम्भ का कार्य करेगी।

औपचारिक शिक्षा की दृष्टि से भले ही उन्होंने कोई डिग्री हासिल नहीं की, लेकिन आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड की 14 कक्षाओं तथा थोकड़ों की परीक्षाओं में आपने सर्वोच्च अंक प्राप्त किए। इसके अलावा रत्न संघ तथा अन्य संघों द्वारा आयोजित सभी परीक्षाओं के प्रश्न पत्रों को भी हल करती रहती थी। वे एक मिनिट भी अपना समय व्यर्थ नहीं करती थी। सूर्य की पहली किरण से उनका स्वाध्याय और लेखन प्रारम्भ हो जाता और सांझ की ढलती किरण के साथ समाप्त होता। उनके जीवन से प्रेरणा मिलती है कि ''भांरडपक्खीव चरेऽपमतो' (उतराध्ययन सूत्र) भारंड पक्षी की तरह साधक को हमेशा अप्रमत्त रहना चाहिये। मोक्ष मार्ग की साधना में साधक के लिए प्रमाद बड़ा बंधक है। आयुष्य का एक क्षण भी पृथ्वी के सब रत्न देकर भी नहीं खरीदा जा सकता है। हमें भी उनसे स्वाध्याय की प्रेरणा लेकर समय का सदुपयोग करते हुए उपयोगी साहित्य और आगम का स्वाध्याय करते रहना चाहिये। इससे जैन दर्शन का सांगोपांग ज्ञान तो होगा ही, साथ में जीवन के उत्तरार्ध में तीसरे मनोरथ संलेखना संथारे के भाव प्रस्फुटित होंगे। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें उनके 16 दिन के आये संथारे में मिलता है।

शासन प्रभाविकाजी म.सा. जहां संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, आगम व थोकड़ों की अच्छी ज्ञाता थीं वहीं मधुर एवं प्रभावी प्रवचनकार भी थीं तथा कलम की धनी लेखिका भी। उनके द्वारा लिखित पर्युषण पर्वाराधना, पर्व संदेश, हमारे वंदनीय, देश की बगिया के फूल, पथ की रुकावटें, सुजान ज्योति, जीवन अमृत की छाँव, शिवपुरी की सीढ़ियाँ आदि पुस्तकें जन-जन का मार्गदर्शन कर रही हैं। जीवन के उत्तरार्द्ध में मधुमेह के कारण उन्हें बहुत तकलीफ रहती थी, लेकिन हाथ में तब भी किताब रहती थी तथा अपनी छोटी सतियों को स्वयं पाठ देती और सुनती भी थी। उनकी बीमारी या वृद्धावस्था ने व्याख्यान देने से उन्हें कभी नहीं रोका। यहाँ तक कि संथारा लेने के 10-15 दिन पहले भी चौमासी चौदस तक व्याख्यान दिए।

वे मृदुभाषी थीं, लेकिन निर्भीक भी थीं, सत्य बात कहने में कभी हिचकिचाहट नहीं होती थी, कहने का ढंग बड़ा सटीक होता था। हम भी मृदुभाषी बनें, निडर बनें तथा कथनी और करनी में सामंजस्य रखें। सोना कभी पुराना नहीं होता, उसके चाहे जैसे गहने बनवा दिये जाएं, परन्तु वह अपनी चमक नहीं छोड़ता। वैसे ही महासती मैनासुन्दरी जी म.सा. भी वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुकी थी, लेकिन उनका व्यक्तित्व हमेशा विशिष्ट चमक लिये

सबके रास्ते को रोशन करता रहेगा।

वे इस समय रत्नसंघ के सभी साधु साध्वियों में यहाँ तक कि पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. तथा उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा. से भी उम्र तथा दीक्षा पर्याय में बड़ी थीं। उनकी दीक्षा पर्याय 70 वर्ष की थी, लेकिन छोटे से छोटे नवदीक्षित मुनि को भी संघ की परम्पराओं के अनुकूल उनके आनाकानी करने पर भी आदर एवं सम्मान देना नहीं भूलती थी। हमें भी अपने परिवार, समाज एवं देश की उपयोगी और अच्छी परम्पराओं को सम्मान देते रहना चाहिए। परम्पराएँ समय की मांग के अनुसार बनती और बदलती रहती हैं। लेकिन कुछ हमारे देश एवं समाज की ऐसी मूलभूत परम्पराएँ तथा आदर्श हैं जो कभी पुराने नहीं होते, हमें भी अपनी सभ्यता एवं संस्कृति और धार्मिक मान्यताओं को सम्मान देना नहीं भूलना चाहिए।

उनकी शरीर सम्पदा भी बहुत सुन्दर थी, चमकता हुआ ललाट एवं चेहरा, दमकता हुआ शरीर इस बात की प्रेरणा देता है कि आधुनिक भौतिक साधनों की लीपापोती से चेहरा नहीं चमकायें, बल्कि अपने आन्तरिक सौरभ से चेहरे को चमकायें जो उम्र के ढलने के बाद छटा भी बिखेरता रहेगा।

शिष्याओं के प्रति उनका स्नेह एवं प्रेम बेजोड़े था, हम भी अपने परिवारजनों के साथ ऐसा वातावरण बनायें कि वे भी हमें आँखों की पलकों पर बिठायें। हम किसी के आँख की किरकिरी की तरह नहीं आँख का काजल बनें।

वास्तव में उनका व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था। छोटे-बड़े सभी श्रावक-श्राविकाएँ ही नहीं संत सतीवर्ग भी आपको बहुत सम्मान एवं आदर देता था। इसलिये उनके देवलोकगमन के बाद आयोजित सभा में उपाध्याय श्री मानचन्द्र जी महाराज सा ने फरमाया कि वे गुणवान सती थीं, श्राविकाएँ उनके गुण ग्रहण करेंगी तो उनका जीवन भी महक उठेगा। वास्तव में यह सत्य है कि-"हर शख्स की जुबां पे नाम है आपका, हर दिल पे छाप छोड़ गया व्यक्तित्व आपका" *-निदेशक, श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, घोड़ों का चौक, जोधपुर (राज.)*

स्वाध्यायियों के लिए आवश्यक सूचना

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ के सभी स्वाध्यायी भाई-बहनों से निवेदन है कि वे जिनवाणी पत्रिका के दिसम्बर-2016 में पृष्ठ संख्या 35 पर प्रकाशित स्वाध्यायी परिचय-पत्र को पूर्ण भरकर शीघ्र ही स्वाध्याय संघ कार्यालय, घोड़ों का चौक, जोधपुर-342001 (राज.) में प्रेषित करावें जिससे सभी स्वाध्यायी भाई-बहनों का परिचय-पत्र एवं निर्देशिका तैयार की जा सके। कुछ क्षेत्रों के स्वाध्यायी भाई-बहनों के परिचय-पत्र प्राप्त हो चुके हैं। उन्हें यह परिचय-पत्र भरने की आवश्यकता नहीं है। साथ ही आप उसमें अपनी पर्युषण सेवा वर्ष (कहाँ से कहाँ तक) की भी जानकारी अवश्य दें। परिचय-पत्र आप **25 जनवरी 2016** तक भिजवा देवें। उसके पश्चात् प्राप्त परिचय-पत्र स्वीकार नहीं होंगे। *-गोपालराज अबानी, सचिव*

अभिमत

श्री अशोक कहारडा

जिनवाणी के नवम्बर-2016 के अंक में श्री पी.एस. सुराणाजी का आरोग्य सम्बन्धी आलेख पढ़ा। आरोग्य कैसे रखा जाए, इसके सम्बन्ध में जानकारी हुई। खान-पान, आहार द्वारा मानव के चित्त एवं स्वभाव पर पड़ने वाले असर की उम्दा व्याख्या की एवं पाठक के मन में आहार विषयक विचार का बीज भी डाला। रात-दिन छोटी-छोटीसी सावधानी रखें तो भी बहुत लाभदायी है।

-ग्राम सेवा सहकारी समिति, पो. लोरड़ी पण्डितजी, वाया-लवेरा बावड़ी, जिला-जोधपुर-342037(राज.)

बाल-स्तम्भ

क्या होता है संथारा?

श्रीमती कमला हणवन्तमल सुराणा

दिल्ली पब्लिक स्कूल, जोधपुर के बच्चे विरामकाल (Interval) में मैदान में खेल रहे थे। तभी कुशाग्र को चपरासी बुलाने आया। कुशाग्र की मित्र-मण्डली ने जानना चाहा कि कुशाग्र को चपरासी बुलाने क्यों आया? पता चला कि उसके दादाजी बुलाने आए हैं।

कुशाग्र ने दादा से पूछा-''आप मुझे छुट्टी दिलाने क्यों आए हैं?

दादा ने कहा-''परिवार वाले संथारालीन महासती श्री मैनासुन्दरीजी के दर्शन करने चलेंगे।'' कुशाग्र के साथ सभी सामायिक-स्वाध्याय भवन, पावटा में दर्शन-वंदन करने गए। कुशाग्र ने बड़े ध्यान से वहाँ का दृश्य देखा। उसे आश्चर्यमिश्रित आनन्द हुआ।

दूसरे दिन स्कूल के बच्चों ने पूछा-'कुशाग्र! तेरे दादाजी तुम्हें कहाँ ले गए थे?'

अरे मित्रों! मैं तो अनूठा उत्सव देखकर आया हूँ। एक 82 वर्षीय महासती श्री मैनासुन्दरीजी ने सजग अवस्था (Conscious stage) में भोजन (सभी खाद्य पदार्थ) का आजीवन त्याग कर दिया है, केवल पानी की छूट रखी है। इसे जैन धर्म की भाषा में 'संथारा' कहते हैं। उन्हें अपना मरणकाल समीप मालूम हुआ तो उन्होंने शरीर का पोषण करने वाले भोजन को छोड़ दिया। अपना पूर्ण समय एवं ताकत आत्मसाधना में लगा दी। उन्होंने 21 नवम्बर 2016 को सायं 4.00 बजे संथारे का प्रत्याख्यान किया। आज उनके संथारे को 15 दिन हो गए हैं।

ऋतिक, शिवम्, दिव्यांशु और नींव चारों मित्रों को वहाँ जाने की बड़ी उत्सुकता हुई। वे सभी अजैन थे, उन्होंने ऐसी बात कभी न देखी न सुनी थी।

बच्चों ने अपने-अपने घर जाकर संथारा की बात बताई तो उनकी माताओं ने भी दर्शन करना चाहा। बच्चों के घरों से फोन आए कि हमें भी दर्शन करवा दीजिए। फोन के द्वारा तय हुआ कि एक बजे कुशाग्र के घर से सभी दर्शन करने चलेंगे। कुशाग्र के दादाजी सभी के शुभ भाव जानकर गद्गद् हुए और सोचा कि यह तो सोने में सुहागा है।

संथारा का आज 16 वां दिन था। उन्होंने एक बड़ी गाड़ी ली और दर्शनाभिलाषियों को लेकर संथारालीन सतीवर्या के दर्शनार्थ सामायिक-स्वाध्याय भवन, पावटा पहुँचे। वहाँ भवन के एक ओर नवकार मंत्र का जाप हो रहा था। मधुरव्याख्यानी श्रद्धेय श्री गौतममुनिजी म.सा., तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनिजी म.सा., श्रद्धेय श्री मनीषमुनिजी म.सा. एवं सतीवृन्द के द्वारा वैराग्यपोषक उद्बोधन एवं भजनों की सरिता बहायी जा रही थी। पूर्ण शांति का वातावरण था। दर्शनार्थियों के लिए दर्शन की सुन्दर व्यवस्था की गई थी। महासती जी ने आगन्तुकों को 'दया पालो' का हाथ से संकेत किया। सतीवर्याजी शान्त मुद्रा में थे, किसी भी प्रकार की ठसक, कराहट नहीं थी। सभी के मन में उनके प्रति अहोभाग्य जग रहे थे। सभी संत-सतियों के दर्शन-वन्दन कर मंगलपाठ लेकर घर आ गए। कुशाग्र के घर वालों ने उनकी अच्छी आवभगत की और जलपान करवाया। तत्पश्चात् बच्चों ने महासतीवर्या और संथारा के बारे में जानने की जिज्ञासा प्रकट की।

ऋतिक- 'दादाजी! साध्वीजी का क्या नाम है? दीक्षा क्यों? और कब ली?

दादाजी- 'सुनो बच्चों! इनका नाम महासती मैनासुन्दरीजी है। उन्होंने साढ़े बारह वर्ष की वय में दीक्षा

ग्रहण कर ली। इसलिए बालब्रह्मचारिणी हैं। इनका जन्म आषाढ़ शुक्ला द्वितीया विक्रम संवत् 1990 (सन् 1933) में हुआ और विक्रम संवत् 2003 को रत्नसंघ के सप्तम पट्टधर संत-सुमेरु आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के मुखारविन्द से बारणी ग्राम, जिला-जोधपुर में दीक्षा हुई। इनकी दो बड़ी बहिनें, छोटी आयु में विधवा हो गई। वे बहुत दुःखित रहती थीं। उनका दुःख देखा नहीं गया और मात्र 11 वर्ष की आयु में संकल्प ले लिया कि मैं विवाह नहीं करूँगी और इसके साथ ही वे साध्वियों के सान्निध्य में रहने लगी। उनकी माता जतनीदेवी और पिताजी श्री रिडमलजी भंडारी थे। आपका जन्म चेन्नई महानगरी में हुआ था। घर वाले दीक्षा दिलाने के पक्ष में नहीं थे। कमरे में भूखी-प्यासी रखा गया, लेकिन प्रण की पक्की ने प्रण पूरा कर लिया। इनकी माताजी पक्ष में थी, उन्होंने कहा- ''संसार दुःखों का सागर है और ज्वाला के समान है।''

आपने 70 वर्षों तक निष्ठा एवं दृढ़ता से संयम का पालन किया। आप प्रखर बुद्धि सम्पन्न एवं विदुषी साध्वी थीं। अध्ययन और स्वाध्याय में अनवरत लगी रहती थीं। एक क्षण भी विकथा में नहीं गंवाती थीं। आपको आगमों का अच्छा ज्ञान था। आपश्री ने अनेक धार्मिक पुस्तकें लिखी हैं। प्रवचन और व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि सुनने वाले वशीभूत हो जाते थे। कई मुसलमान भाई शाकाहारी बन गए और कुछ न कुछ व्रत लेकर जाते थे। एक सिन्धी भाई तो जैन धर्म के प्रति इतना श्रद्धालु बन गया कि सामायिक, पौषध और उपवास भी करने लगा। आपश्री में नेतृत्व और वक्तृत्व की अनूठी कला थी। अनेक गुणों से सम्पन्न होने के कारण आचार्यश्री हस्तीमल जी म.सा. ने एक जनवरी 1990 में शासनप्रभाविका विरुद से आपको शोभित किया। अनेक मुमुक्षु बहिनें आपके सम्पर्क में आकर शिष्याएँ बन गईं।

दिव्यांशु- 'दादाजी, संथारा क्या होता है? कुछ समय पहले समाचार पत्रों में संथारे के पक्ष-विपक्ष में विचार पढ़े थे, मेरे तो कुछ पल्ले नहीं पड़ा।'

दादाजी- संथारा देह-त्याग, संसार-त्याग की अंतिम साधना है। यह अति कठिन है। बिरले ही संथारा ग्रहण करते हैं। कुछ समय पहले मीनूजी जैन ने सजग अवस्था में संथारा ग्रहण किया और 44 दिन में सीझा। मुनिश्री सागरमलजी म.सा. को 59 दिन का संथारा आया। मुनिश्री माणकमलजी म.सा. को 35 दिन का संथारा आया। आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. को 13 दिन का संथारा आया।

बच्चों! यह जरूरी नहीं है कि संथारा बहुत दिनों का आए। यह बहुत अल्प समय का भी आ सकता है। संथारा जैन धर्म की विशेष मरणविधि है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान के समय से ही चली आ रही है। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाएँ या अन्य व्यक्ति मृत्यु को निकट जानकर इसे ग्रहण कर सकते हैं। संथारा स्वयं, साधु-साध्वी या अन्य जानकार व्यक्ति से लिया जा सकता है।

शिवम्- 'दादाजी, इसमें क्या त्यागा जाता है?'

दादाजी- सभी प्रकार की खाद्य सामग्री त्याग दी जाती है। इसे तिविहार संथारा कहते हैं। कुछ पात्र, मुखवस्त्रिका और ओघा रखकर शेष समग्र सांसारिक सामग्री का त्याग कर दिया जाता है। संथारालीन की पानी छोड़ने की इच्छा हो जाती है तो वह भी छोड़ दिया जाता है। उसे चौविहार संथारा कहते हैं। यह तो संथारे का बाहरी स्वरूप हुआ। भीतर में वे दोष रहित होने की साधना में रत रहते हैं, मन में किसी भी प्रकार का राग, द्वेष, क्रोध, अहंकार, लोभादि का विचार नहीं रखते। पूर्ण समत्वभाव में लीन रहते हैं, न तो उन्हें मृत्यु का भय लगता है न उन्हें किसी प्रकार का कोई दुःख होता है।

शिवम्- 'दादाजी! संथारा तो आत्महत्या हो गई?

दादाजी– बच्चों! यह तो शुद्ध भाव, सुविचार, आत्म-कल्याण की भावना से लिया जाता है। आत्महत्या तो क्रोध, कुविचार, अधीरता और संकुचित भावावेश में होती है। संथारा और आत्महत्या अलग-अलग प्रक्रिया है। संथारा श्रेष्ठ विचारधारा है।

ऋतिक– दादाजी! इन महासतीजी के पूर्व भी कोई संथारा हुआ क्या?

दादाजी– अनके संथारे हुए हैं। सबका कथन करना सम्भव नहीं, किन्तु पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज का निमाज में 13 दिवसीय तप के साथ अद्भुत संथारा हुआ था। उस समय 1991 में राजस्थान के मुख्यमंत्री भैरोंसिंहजी शेखावत सहित अनेक राजनेता भी उनके दर्शन के लिए आए थे।

दादाजी यह वर्णन कर रहे थे तभी उनके मोबाइल पर समाचार आया कि संथारा सीझ गया है, आप जल्दी पधारिए।

नींव आतुरता से बोला– दादाजी आप चिन्तित क्यों हो गए?

दादाजी– बच्चों महासतीजी का देवलोकगमन हो गया है, मुझे वहाँ जल्दी पहुँचना है।

बच्चे– अब क्या होगा?

दादाजी– अब धूमधाम से बैकुंठी निकाली जाएगी और अंतिम संस्कार किया जाएगा। भजनों की बहार होगी। नवकार मंत्र का उच्चारण होगा।

-ई-123, नेहरूपार्क, सरदारपुरा, जोधपुर-342003 (राज.)

प्रश्नः–

1. कुशाग्र के मित्रों को क्या जानने की उत्सुकता हो रही थी?
2. महासतीजी के कितने दिन का संथारा आया?
3. महासती मैनासुन्दरीजी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिये।
4. 'संथारा' विषय पर लघु निबन्ध लिखिए। (आठ पंक्तियों में)
5. संथारा और आत्महत्या में क्या अन्तर है?

बाल-स्तम्भ [नवम्बर-2016] का परिणाम

जिनवाणी के नवम्बर-2016 के अंक में बाल-स्तम्भ के अंतर्गत 'ऐसे भी होते हैं बच्चे?' के प्रश्नों के उत्तर 20 बालक-बालिकाओं से प्राप्त हुए। पूर्णांक 30 हैं।

पुरस्कार एवं राशि	नाम	अंक
प्रथम पुरस्कार-500/-	श्रेणिक राजेन्द्र जैन-भुसावल (महा.)	27
द्वितीय पुरस्कार-300/-	सम्यक् कीमती-रामपुरा (मध्यप्रदेश)	26.5
तृतीय पुरस्कार- 200/-	आरोही श्रेणिक छाजेड़-भुसावल (महा.)	26
सान्त्वना पुरस्कार- 150/-	जिया जैन-ब्यावर (राज.)	25.5
	अरिष्ट कोठारी-अजमेर(राज.)	25.5
	अमीषा कोठारी-अजमेर (राज.)	25.5
	रजत गोलेछा-जयपुर (राज.)	25
	अरिन चोरडिया-जयपुर (राज.)	25

कृति की 2 प्रतियाँ अपेक्षित हैं

नूतन साहित्य

डॉ. श्वेता जैन

जल-थल-मल- सोपान जोशी, ***प्रकाशक***- गाँधी शांति प्रतिष्ठान, 221, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002, ***पृष्ठ***-212, ***मूल्य***- 300 रुपये, सन् 2016

मल के विसर्जन की व्यवस्था ने प्राचीनकाल से अबतक जो सफर तय किया है तथा भारत और विभिन्न देशों में इसकी कैसी व्यवस्थाएँ रही हैं, वर्तमान में क्या व्यवस्थाएँ हैं- इन विषयों पर तथ्यात्मक एवं चिन्तनपूर्ण लेखन प्रस्तुत पुस्तक में हुआ है। मल के चक्र को प्रकृति ने स्वयं व्यवस्थित कर रखा है, जिसका पता व्हेल के अन्धाधुन्ध शिकार के द्वारा लगा। यूरोप और अमेरिका के बीच के अंध महासागर से व्हेल मछली गायब होने लगी तो आशंका हुई कि अब समुद्र में वे जीव बढ़ गए, जिन्हें व्हेल खाती थी। जाँच करने पर नतीजा उलटा निकला- क्रिल नामक जीव जो व्हेल का भोजन था वह व्हेल के घटने से घटने लगा। ऐसा क्यों हुआ तो समझ में आया कि क्रिल का जीवन प्लवक पर निर्भर था और प्लवकों के फलने-फूलने में व्हेल के मल में पाया जाने वाला लोह तत्त्व सहायक था। इस प्रकार जीव के मल में अपने भोजन को तैयार करने की उर्वरकता मौजूद होती है। ऐसा मानवमल में भी है। उसके मूत्र में नाइट्रोजन और मल में फासफोरस उपलब्ध रहता है जो पौधों के पनपने में आवश्यक तत्त्व है। मल विष का रूप ले या अमृत का- यह बात विचारणीय है। मल को जल के साथ बहा दिया जाए तो जलस्रोत दूषित होते हैं और उससे संक्रमित पानी पीने में आ जाए तो हैजा आदि बीमारियाँ फैलती हैं। यह मल का विष रूप में परिणत होना है। यदि मल को इकोसैन शौचालय के माध्यम से खाद बनाकर अन्न-उत्पादक के रूप में उपयोगी बनाया जाए तो यह मल अमृत रूप है। इकोसैन पद्धति से जमीन के अन्नरूप में परिवर्तित उर्वरक भोजन के माध्यम से हमारे शरीर में से होते हुए पुनः जमीन में पहुँचते हैं, जल स्रोतों का प्रदूषण नहीं करते। तमिलनाडु के श्री सुब्बूरामन ने इकोसैन शौचालय का प्रारूप बनाया है। जिसका विस्तृत विवरण पुस्तक में उपलब्ध है। लेखक जोशी खेद प्रकट करते हुए कहते हैं कि भारत में सिविल इंजीनियरी की पढ़ाई में शौचालय और सीवर पर ध्यान नहीं दिया जाता।

मल का सम्बन्ध जल और थल से होता है, अतः इस त्रिकोण से लिखी गई इस पुस्तक में दश अध्याय हैं- 1. जल थल मल, 2. शौचालय से निकले हुए विचार, 3. सफाई के मंदिर में बलिप्रथा, 4. शरीर से नदी की दूरी, 5. गोदी में खेलती हैं इसकी हजारों नदियाँ, 6. मैले पानी का सुनहरा सच, 7. पुतले हम माटी के, 8. खाद्य सुरक्षा की थल सेना, 9. मल का थल विसर्जन, 10. मलदर्शन। इन अध्यायों में तथ्यात्मक वर्णन के साथ मानव समाज को सावचेत भी किया गया है। पशुओं की तरह मनुष्य का मल-मूत्र निर्दोष नहीं होता, अतः खुले में करते हुए मल-विसर्जन के समय दूसरा मल पास में रहने से बीमारियाँ फैलती हैं। दूसरी ओर लेखक यह भी कहता है कि फ्लश की ढेकली घुमाकर अपना मल-मूत्र बहाने वाले लोगों का अपने जल स्रोतों से सम्बन्ध तो खराब है ही। इसके पीछे सीवर में गोता लगाने वाले सफाई कर्मचारियों के साथ होने वाला अन्याय भी है। जिसे हम स्वच्छता मान बैठे हैं, उसमें घोर अनैतिकता का मैला मिला हुआ है। इस प्रकार खुले में शौच और फ्लश शौचालय दोनों में अपने-अपने दोष हैं। किताब के कवर पृष्ठ पर स्पष्ट लिखा है- "शौचालय का होना न होना भर इस किताब का विषय नहीं है। यह तो केवल एक छोटी-सी कड़ी है, शुचिता के तिकोने विचार में।" यह पुस्तक संदेश दे रही है कि स्वच्छता का

चिन्तन व्यापक स्तर पर हो। मात्र शौचालय निर्माण से स्वच्छता संभव नहीं है। सीवरेज व्यवस्था के बनने से जल स्रोतों में प्रदूषण, खेतों में रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग को बढ़ावा मवेशियों के चारे की समस्या, बीमारियों में वृद्धि, प्राकृतिक असंतुलन जैसी समस्याएँ विकराल रूप लेने लगी हैं। मल के सम्बन्ध में उसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया पर विचार करना होगा, उससे प्रभावित प्रत्येक पक्ष पर दूरदृष्टि से चिन्तन करना होगा तभी सही मायने में स्वच्छता अभियान पूर्ण होगा। इस पुस्तक से यह भी संदेश प्राप्त होता है कि मल यदि ग्राम-नगर से दूर खुले में किया जाए एवं वह सूख जाए तो बीमारी का कारण नहीं बनता। यदि उसे राख से ढक दिया जाए तो वह दुर्गंध नहीं देता है तथा कुछ समय पश्चात् अच्छे खाद का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। यह पुस्तक मल-निस्तारण की सही प्रक्रिया के लिए भारत सरकार एवं नीति निर्माताओं के द्वारा भी पठनीय है।

महाणिसीहसुतं : संहिता व आशय- साध्वी डॉ. स्नेहप्रभाजी, ***प्रकाशक***- प्राकृत भाषा विभाग, पुणे विद्यापीठ, पुणे, प्राप्ति स्थान- सचिव, महावीर जैन श्वेताम्बर समिति, 'महावीर भवन' भगवान महावीर नगर, सेक्टर-11, उदयपुर-313002 (राज.), फोनः 0294-2483105, ***पृष्ठ***-350, ***मूल्य***- 150 रुपये मात्र, सन् 2007

आचार्य हरिभद्रसूरि विरचित महानिशीथ सूत्र में श्रमण और श्रमणियों के जीवन से सम्बद्ध आचार विषयक नियमों का विश्लेषण है। इसे छेदसूत्रवत् स्वीकार किया जाता है क्योंकि नन्दीसूत्र में उल्लिखित महानिशीथ (छेदसूत्र) के पृष्ठ नष्ट होने पर आचार्य हरिभद्र ने परिष्कार कर इसे एक स्वरूप प्रदान किया। साधारण रूप से 'निशीथ' को लघुनिशीथ और इसको महानिशीथ कहा जाता है। महानिशीथ छह अध्ययनों और दो चूलिकाओं में विभक्त है। प्रथम अध्ययन का नाम शल्योद्धारण है, इसमें वैराग्य की अभिवृद्धि करने वाली गाथाएँ हैं तथा साधक को शल्य रहित होने पर बल दिया गया है। द्वितीय अध्ययन में कर्मविपाक का विवेचन है। तृतीय अध्ययन में नमस्कार मंत्र, उपधान, अनुकम्पा आदि का वर्णन है। चतुर्थ अध्ययन में कुसंग के दृष्टान्त, शिथिल आचार आदि का निरूपण तथा पंचम अध्ययन में गच्छ के स्वरूप का वर्णन है। 'गीयत्थविहार' नामक छट्ठे अध्ययन में प्रायश्चित्त की विधि बताई है।

प्रस्तुत पुस्तक महानिशीथ पर साध्वीजी का शोध कार्य है। छेदसूत्र को प्रायश्चित्त सूत्र(प्राश्चित्त विधि का वर्णन होने से) एवं उत्तम श्रुत (प्रायश्चित्त द्वारा चारित्र विशुद्धि होने से) भी कहा जाता है। यहाँ 'महा' विशेषण विस्तृत अर्थ में न होकर महत्त्वपूर्ण अर्थ में है। निशीथ शब्द का अर्थ निषेधक है। इसमें छः प्रकरण हैं। प्रथम प्रकरण में प्रस्तावना, आगम, छह छेदसूत्र का विवेचन है, द्वितीय प्रकरण में मूल महानिशीथ है, तृतीय प्रकरण में महानिशीथ का संक्षिप्त भाषान्तर है, चतुर्थ प्रकरण में पाठ भेद, पंचम प्रकरण में विशेष टिप्पणियाँ तथा षष्ठ प्रकरण में उपसंहार व संदर्भ ग्रंथ सूची है। चतुर्थ प्रकरण मराठी में है एवं शेष हिन्दी में है। साध्वीजी द्वारा महानिशीथ का भाषान्तर लिखे जाने से प्रथम बार हिन्दी पाठियों के लिए यह उपलब्ध हुआ है।

आगामी पर्व तिथि

पौष शुक्ला 14, बुधवार	11.01.2017	चतुर्दशी, आचार्य श्री हस्ती का 107 वाँ जन्मदिवस
पौष शुक्ला 15, गुरुवार	12.01.2017	पक्खी
माघ कृष्णा 4, सोमवार	16.01.2017	उपाध्याय श्री मानचन्द्रजी म.सा. का 83 वां जन्मदिवस
माघ कृष्णा 8, शुक्रवार	20.01.2017	अष्टमी
माघ कृष्णा 14, गुरुवार	26.01.2017	चतुर्दशी
माघ कृष्णा 30, शुक्रवार	27.01.2017	पक्खी
माघ शुक्ला 2, रविवार	29.01.2017	आचार्य हस्तीमलजी म.सा. का 97 वां दीक्षा दिवस
माघ शुक्ला 8, शनिवार	04.02.2017	अष्टमी

समाचार विविधा

जोधपुर में शासनप्रभाविकाजी का संथारा सीझा

साध्वीप्रमुखा शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. का तिविहार संथारा समाधिपूर्वक पावटा स्थानक में उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा. आदि ठाणा 14 एवं महासती श्री रतनकंवरजी आदि ठाणा 33 की उपस्थिति में धर्म जागरणा के साथ चल रहा था। 06 दिसम्बर को साध्वीप्रमुखाजी को दोपहर 2.45 बजे उपाध्याय भगवन्त ने चौविहार संथारा के प्रत्याख्यान करवाये। उसके पश्चात् लगभग 4.30 बजे साध्वीप्रमुखाजी का 16 दिवसीय संथारा सीझ गया। सभी संत-सतियाँजी द्वारा उनके भावों को बढ़ाते हुए पूर्ण सहयोग दिया गया। 07 दिसम्बर 2016 को प्रातः महाप्रयाण यात्रा पावटा स्थानक से प्रारम्भ होते हुए मेड़ती गेट, घण्टाघर, कन्दोई बाजार, कटला बाजार, आडा बाजार, खाण्डाफलसा होते हुए सिवांची गेट श्मशान में दोपहर के 1.00 बजे हजारों श्रावक-श्राविकाओं के साथ पहुँची। जिसमें जयपुर, निमाज, ब्यावर, पीपाड़, गोटन, पाली, सवाईमाधोपुर, बालोतरा, चेन्नई आदि क्षेत्रों से श्रावक-श्राविकाओं ने भाग लिया। राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री पी.एस. सुराणा साहब जब से संथारा प्रारम्भ हुआ तब से ही महासतीजी की सेवा में उपस्थित थे। महासतीजी की पार्थिव देह को उनके परिवार के सदस्यों व राष्ट्रीय अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष एवं स्थानीय संघ के अध्यक्ष/मंत्री ने मुखाग्नि दी। दूसरे दिन 8 दिसम्बर को सुबह 9.00 बजे उपाध्यायप्रवर के सान्निध्य में गुणानुवाद सभा पावटा स्थानक में रखी गई। गुणानुवाद सभा में प्रवचन हॉल ठसाठस भरा हुआ था। कई श्रावक-श्राविका बोलना चाहते थे, परन्तु समयाभाव के कारण उन्हें मौका नहीं मिला। इसके लिए सभी से संघ द्वारा क्षमायाचना की गई। (गुणानुवाद सभा का विवरण अलग से प्रकाशित है।) *-धनपत सेठिया*

साध्वीप्रमुखा-शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. के संथारापूर्वक समाधिमरण पर गुणानुवाद सभाओं का आयोजन

रत्नसंघ की दीक्षा पर्याय में सर्वतो वरिष्ठ साध्वीप्रमुखा शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. के 16 दिवसीय संथारापूर्वक 06 दिसम्बर 2016 को समाधिमरण के पश्चात् विभिन्न ग्राम-नगरों में 7 एवं 8 दिसम्बर को गुणानुवाद सभाओं का आयोजन हुआ। पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के सान्निध्य में सोजत रोड़ में, श्रद्धेय उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा. के सान्निध्य में पावटा, जोधपुर में तथा इसी प्रकार जहाँ-जहाँ भी संत-सतीवृन्द विराजमान थे, वहाँ-वहाँ गुणानुवाद सभाएँ आयोजित कर उनके गुणों का स्मरण किया गया एवं चार लोगस्स के पाठ द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

साध्वीप्रमुखा का जीवन प्रारम्भ से ही वैराग्यमय रहा। संयम के प्रति दृढ़ निष्ठावान, स्वाध्याय के प्रति समर्पित, पूज्य गुरुदेव आचार्य हस्ती एवं गुरुणीवर्या के प्रति रोम-रोम में श्रद्धाभाव से सिक्त, संघनायक एवं उपाध्यायप्रवर के प्रति आज्ञा पालन में तत्पर, महासती मण्डल को सम्हालने एवं उन्हें संयम के प्रति सजग बनाये रखने में दक्ष, निर्भीकतापूर्वक सत्य को प्रस्तुत करने में कुशल, भीतर से कोमल, अनुशासन में कठोर रहकर आपने जिनशासन की महती प्रभावना की। आपकी प्रवचनशैली एवं लेखनशैली दोनों ने आपके व्यक्तित्व को संवारा। जिससे तनिक भी कुछ सीखती, तो उसके प्रति आप कृतज्ञ रहतीं। आपमें व्यवहारकुशलता एवं आचारनिष्ठा दोनों का अद्भुत समन्वय था। शारीरिक अस्वस्थता में भी आप करणीय कार्यों को विवेकपूर्वक यथासमय सम्पन्न करती थीं। सम्पूर्ण जीवन साधनामय बीता। इसीलिए अंतिम समय में आप संलेखना संथारापूर्वक समाधिमरण का वरण करने में सक्षम हुई।

आपके प्रबुद्ध एवं संयमनिष्ठ वचनों से सहस्रों जनों का जीवन सुधरा। हजारों लोग धूम्रपान, मदिरापान आदि व्यसनों से मुक्त हुए। आप लोगों को आत्मीयतापूर्वक समझाने में निपुण थीं। इसलिए जैन-अजैन सभी बंधु आपकी वाणी से प्रभावित थे। संघ में अनेक संत एवं महासतीवृन्द आपके उपकारों का आज भी स्मरण करते हैं। सहस्रों श्रावक-श्राविका आपके सान्निध्य एवं मार्गदर्शन से लाभान्वित हुए हैं। आपने आगमों का पारायण ही नहीं किया, अपितु उनसे प्रेरणा भी प्राप्त की। आचार्य हस्ती के सामायिक एवं स्वाध्याय के संदेश को आपने उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत के साथ मध्य भारत एवं राजस्थान में भी पुरजोर शब्दों में प्रचारित किया। आपने जिनशासन की प्रभावना में जो कौशल दिखाया उसी का परिणाम है कि अध्यात्मयोगी आचार्य हस्ती ने 01 जनवरी 1990 को आपको **शासनप्रभाविका** के विरुद से सम्मानित किया। आपके संथाराकाल में विभिन्न सम्प्रदायों के संत-सतियों ने दर्शन किए, उनमें आचार्य श्री रामलालजी म.सा. के आज्ञानुवर्ती श्री निश्चलमुनिजी म.सा. आदि संतों का भी नाम उल्लेखनीय है।

विभिन्न ग्राम-नगरों में आयोजित गुणानुवाद सभाओं में आपके जीवन एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए आपके विविध गुणों का स्मरण किया गया। यहाँ पर सोजत रोड़ के अतिरिक्त कतिपय ग्राम-नगरों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है। आचार्यप्रवर के सान्निध्य में सोजतरोड़ में हुई गुणानुवाद सभा का विवरण पृष्ठ 90 पर प्रकाशित है।

जोधपुर- साध्वीप्रमुखाजी को श्रद्धा-सुमन अर्पित करने हेतु 8 दिसम्बर 2016 को सामायिक-स्वाध्याय भवन, पावटा में गुणानुवाद सभा का आयोजन रखा गया। प्रवचन सभा में उपाध्यायप्रवर एवं सन्त-सतीवृन्द सहित सैंकड़ों की संख्या में श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति रही। प्रवचन सभा में पूर्व संघाध्यक्ष श्री ज्ञानेन्द्रजी बाफना, संघाध्यक्ष श्री पी. एस. सुराना-चेन्नई, जोधपुर संघ अध्यक्ष श्री धनपतचन्दजी सेठिया, श्री धर्मचन्दजी जैन, श्री लखपतजी भण्डारी, श्री अरूणजी मेहता, श्री पुनवानचन्दजी ओस्तवाल, श्री पारसमलजी गिड़िया, श्री गजेन्द्रजी चौपड़ा, श्रीमती सुशीलाजी बोहरा, श्रीमती कमलाजी सुराणा, श्रीमती पूजाजी गिड़िया एवं समता संघ से श्री गुलाबजी चौपड़ा, जयमल जैन श्रावक संघ से श्री कानराजजी मोहनोत आदि वक्ताओं ने साध्वीप्रमुखाजी के समाधिमरण को महोत्सव बताते हुए उनके आत्मीय गुणों को उजागर किया। प्रवचन सभा में उपाध्यायप्रवर पण्डित रत्न श्री मानचन्द्रजी म.सा., श्रद्धेय श्री गौतममुनिजी म.सा., श्री नन्दीषेणमुनिजी म.सा., श्री प्रमोदमुनिजी म.सा., श्री योगेशमुनिजी म.सा., श्री मनीषमुनिजी म.सा., श्री लोकचन्द्रमुनिजी म.सा., श्री दर्शनमुनिजी म.सा., श्री जितेन्द्रमुनिजी म.सा. ने भी साध्वीप्रमुखाजी के अनेक गुणों की व्याख्या करते हुए उनके संयमी जीवन की झांकी प्रस्तुत की। साध्वीवृन्द में विदुषी महासती श्री सौभाग्यवतीजी म.सा., व्याख्यात्री महासती श्री चारित्रलताजी म.सा., व्याख्यात्री महासती श्री विनीतप्रभाजी म .सा. ने भी पूज्या गुरुणीजी के उपकारों को गिनाते हुए उनके विशेष गुणों की व्याख्या करते हुए उनके संयमी जीवन से सीख लेने की प्रभावी प्रेरणा की। प्रवचन सभा में चार लोगस्स के साथ साध्वीप्रमुखाजी को श्रद्धा-सुमन अर्पित किए। सभा का संचालन संघमंत्री श्री सुभाषजी हुण्डीवाल ने किया। *-सुभाष हुण्डीवाल, मंत्री*

शोरापुर (कर्नाटक)- व्याख्यात्री महासती श्री निःशल्यवतीजी म.सा. आदि ठाणा 5 की पावन सन्निधि में शासन प्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. के संथारे का समाचार प्राप्त होने पर 22 नवम्बर को शोरापुर पहुँचने के बाद संथारा दिवसों में प्रतिदिन 1 घण्टे नवकार मंत्र का जाप हुआ। प्रतिदिन बीयासन, एकाशन, आयंबिल, उपवास आदि तप हुए। प्रतिदिन प्रवचन में साध्वीप्रमुखा के गुणगान किए गए। महासतीजी ने उनके उपकारों का श्रद्धा भाव से स्मरण किया। संथारा सीझने के समाचार मिलने पर चार लोगस्स के साथ श्रद्धांजलि दी गई। महासतीजी ने गुणानुवाद सभा में कहा कि साध्वीप्रमुखाजी ने 70 वर्षों के संयमकाल में रत्नसंघ को सुदृढ़ बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है

तथा संसार से विदा होते हुए भी समाधिमरण का आदर्श प्रस्तुत किया है। *-किशोर छाजेड़, अध्यक्ष*

बैंगलुरु- 08 दिसम्बर 2016 को श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, राजाजी नगर, बैंगलुरु एवं श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ (कर्नाटक) बैंगलुरु के संयुक्त तत्त्वावधान में समर्थगच्छीय परम विदुषी महासती श्री सुलोचनाश्रीजी म.सा. एवं परम विदुषी महासती श्री संगीताश्रीजी म.सा. आदि ठाणा 4 की पावन सन्निधि में राजाजी नगर जैन स्थानक भवन में गुणानुवाद सभा आयोजित हुई। प्रातः 8.30 बजे नवकार महामंत्र का सामूहिक जाप किया गया। तत्पश्चात् महासती श्री निधिश्रीजी म.सा. ने जीवन की महत्ता एवं क्षणभंगुरता पर प्रकाश डालते हुए समाधिमरण का महत्त्व बताया। श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ (कर्नाटक) बैंगलुरु के मंत्री श्री गौतमचन्दजी ओस्तवाल ने दिवंगत साध्वीप्रमुखा श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. की सम्पूर्ण जीवन झाँकी ओजस्वी भाषा में अभिव्यक्त कर अनेक प्रभावी संस्मरण सुनाये। श्री ओस्तवाल साहब ने रत्नसंघीय साधु-साध्वीवृन्द की गुणग्राहकता, व्यवहार कुशलता, मिलनसारिता, प्रसंगोचित व्यवहार तथा विभिन्न संघ सम्प्रदायों के साथ मधुर मैत्रीपूर्ण व्यवहार का वर्णन किया। जोधपुर में साध्वीप्रमुखा महासतीजी के संथारे पर पिछले 16 दिनों में पधारे श्रमणसंघीय संत-सती, समतासंघीय संतवृन्द, ज्ञानगच्छीय संत-सती, समर्थगच्छीय महासतीवृन्द, मूर्तिपूजक संत-सतीवृन्द का शुभागमन ही रत्नसंघ की विशालता एवं आपसी प्रेमभाव का एक आदर्श अनुपम उदाहरण है। वरिष्ठ धर्माध्यापक श्री प्रकाशचन्दजी पटवा ने बैंगलुरु संघ पर पूज्य महासतीजी के उपकारों पर प्रभावी प्रकाश डाला। श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल (कर्नाटक), बैंगलुरु की मंत्री श्रीमती प्रभा गुलेछा ने अपने विचार गरिमामय गद्य में व्यक्त किए। संघ प्रमुख गुरुभक्त श्री चेतनप्रकाश जी डूंगरवाल ने महासतीजी द्वारा की गई धर्मप्रभावना एवं डूंगरवाल परिवार पर उनके उपकारों का स्मरण कर श्रद्धांजलि अर्पित की। राजाजी नगर संघ-बैंगलुरु के अध्यक्ष श्री महावीरचन्दजी धोका, शांतिनगर श्री संघ-बैंगलुरु के अध्यक्ष श्री महावीरचन्द जी मूथा, राजाजीनगर के पूर्व अध्यक्ष श्री अमरचन्दजी चोरडिया ने भी अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त की। इस प्रसंग पर विभिन्न संघ-संस्थाओं की ओर से श्रद्धांजलि संदेश प्राप्त हुए जिनमें श्री छगनमलजी लुणावत, अध्यक्ष-कर्नाटक जैन स्वाध्याय संघ, श्री सुरेशचन्दजी छल्लाणी, अध्यक्ष-कर्नाटक जैन कॉन्फ्रेन्स, श्री धनपतराजजी सुराणा, संरक्षक-समरथ जैन श्रावक संघ कर्नाटक प्रांत, श्री शांतिलालजी सांड, अध्यक्ष-विल्सनगार्डन श्री संघ, श्री ओमप्रकाशजी लुणावत, पूर्व राज्याध्यक्ष-भारतीय जैन संघटना, श्री गौतमचन्दजी गुगलिया, अध्यक्ष-शांतक्रांति साधुमार्गी जैन श्रावक संघ-बैंगलुरु, श्री कमलचन्दजी सिपाणी, अध्यक्ष-श्री साधुमार्गी जैन संघ-बैंगलुरु, श्री मीठालालजी मकाणा, मंत्री-विल्सनगार्डन श्री संघ, श्री सुनीलजी सांखला-श्री गणेश गुरु सेवा समिति, श्री उत्तमचन्दजी रातड़िया, अध्यक्ष-श्री मरुधरकेसरी जैन गुरु सेवा समिति, श्री पारसमलजी लोढ़ा, अध्यक्ष-मुक्तामिश्री जैन भवन न्यास-ब्यावर, श्री यशवंतराजजी सांखला, अध्यक्ष-अशोकनगर शूले श्रीसंघ, श्री सज्जनराजजी मेहता, जैन युवा संगठन व जीतो-बैंगलुरु, श्री किरण गोलेच्छा, अध्यक्ष-युवा शाखा जैन कॉन्फ्रेंस-कर्नाटक आदि प्रमुख है। विदुषी महासती श्री संगीताश्रीजी म.सा. ने अपने उद्बोधन में महासतीजी के संथारा ग्रहण करने को वीरता का कार्य बताया। अन्त में वरिष्ठ स्वाध्यायी श्रावक श्री नवरतनमलजी भंसाली ने चार लोगस्स का ध्यान कराकर सामूहिक श्रद्धांजलि दी। महासती श्री सुलोचनाजी म.सा. ने सामूहिक प्रत्याख्यान कराकर मंगल पाठ प्रदान किया। रत्नसंघ अध्यक्ष श्री पदमराजजी मेहता ने पधारे हुए सभी महानुभावों के प्रति स्वागत-आभार जताया। *-गौतमचन्द ओस्तवाल, मंत्री*

चेन्नई- साध्वीप्रमुखा जी के संथारापूर्वक देवलोकगमन होने पर 08 दिसम्बर को गुणानुवाद सभा स्वाध्यायी भवन साहूकारपेठ में आयोजित की गई। श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ तमिलनाडु के प्रचार सचिव श्री नरेन्द्र कांकरिया ने सभा का संचालन करते हुए साध्वीप्रमुखा के साधनामय जीवन पर प्रकाश डाला। महासतीजी के सांसारिक पक्ष में

पारिवारिकजनों का परिचय श्री जैन रत्न युवक परिषद् के मंत्री श्री मांगीलालजी चोरडिया ने दिया। श्री उगमचन्दजी कांकरिया, श्री जवाहरलालजी कर्नावट, श्री महावीरचन्दजी तातेड़, श्री रिखबचन्दजी सुराणा, श्री नौरतनमलजी मेहता-जोधपुर, श्राविका मण्डल की अध्यक्ष श्रीमती संगीता जी बोहरा ने महासतीजी के विशिष्ट गुणों का विवेचन किया। वीर पिता श्री अशोक जी कवाड़, श्रीमती इन्द्राजी बोहरा ने प्रत्यक्ष देखे संथारे के दृश्यों का उल्लेख किया।

सवाईमाधोपुर- यहाँ आयोजित गुणानुवाद सभा में श्री राधेश्यामजी जैन संघ-संरक्षक, श्री सुबाहूकुमारजी जैन अध्यक्ष, वरिष्ठ स्वाध्यायी श्री धर्मचन्दजी जैन, मंत्री श्री मदनलालजी जैन, क्षेत्रीय प्रधान श्री कुशलजी गोटेवाला ने साध्वीप्रमुखा के जीवन एवं व्यक्तित्व पर विचार प्रस्तुत किए तथा कहा कि वे सिद्धान्तों से समझौता नहीं करते थे एवं संयम का कठोरता से पालन करते थे। *-मदनलाल जैन, मंत्री*

बालोतरा- श्री जैन रत्न युवक परिषद् एवं श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल द्वारा आयोजित गुणानुवाद सभा में साध्वीप्रमुखा श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. के सम्बन्ध में जैन पाठशाला में गुणानुवाद सभा आयोजित की गई। जिसमें स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ के संयोजक श्री ओमप्रकाशजी बांठिया ने पूज्या महासती के सम्पूर्ण जीवन एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि उन्होंने 70 वर्षों की दीक्षा पर्याय में ओजस्वी शैली में समाज को सतत प्रेरणा प्रदान की। युवक संघ पूर्व राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री धर्मेशजी चौपड़ा ने साध्वीप्रमुखा के साधनामय जीवन की विशेषताओं पर प्रकाश डाला। सभा में बालोतरा एवं बाड़मेर के अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने भाग लिया एवं चार लोगस्स के ध्यान द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की गई। श्री वर्धमान स्थानकवासी संघ द्वारा ज्ञानगच्छीय संतों के सान्निध्य में प्रवचन सभा में चार लोगस्स का कायोत्सर्ग कर श्रद्धांजलि अर्पित की गई। सह मंत्री श्री नरेन्द्रजी भण्डारी ने महासतीजी के जीवन पर प्रकाश डाला। *-ओमप्रकाश बांठिया*

जयपुर- महारानी फार्म स्थित समता भवन में ज्ञानगच्छीया महासती श्री चन्दनाजी म.सा. के सान्निध्य में आयोजित गुणानुवाद सभा में पूज्या शासनप्रभाविकाजी के गुणों का स्मरण कर श्रद्धांजलि अर्पित की गई। महारानी फार्म संघ के अध्यक्ष श्री नरेन्द्र कक्कड़ ने बताया कि ताराचन्द कक्कड़ स्मृति भवन साध्वीप्रमुखाजी के प्रेरणा की देन है। यह क्षेत्र धर्माराधना में उनकी प्रेरणा से आगे बढ़ा है। मंत्री श्री राजकुमारजी नाहर ने भी गुणानुवाद किया। *-नरेन्द्र कक्कड़*

अलीगढ़ (टोंक)- यहाँ श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल के सान्निध्य में पूज्या शासनप्रभाविकाजी पर आयोजित गुणानुवाद सभा में महासतीजी के गुणों का स्मरण कर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गई। श्राविकाओं ने वैराग्य एवं स्तुतिपरक भजनों के माध्यम से भी महासतीजी का गुणानुवाद किया एवं लोगस्स के द्वारा श्रद्धांजलि दी गई।

कोटा- 11 दिसम्बर 2016 को गुणानुवाद सभा रामपुरा स्थानक में आयोजित की गई। सभा का संचालन करते हुए सहमंत्री श्री अनिलकुमार जैन, श्राविका मण्डल की अध्यक्ष श्रीमती सुनीताजी नवलखा, राजस्थान प्रदेश काँग्रेस कमेटी के मुख्य प्रवक्ता श्री पंकजजी मेहता, संघ के अध्यक्ष श्री बुद्धिप्रकाशजी जैन ने पूज्य महासती के जीवन एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला। श्री बुद्धिप्रकाशजी जैन ने महासतीजी के सजग संथारे की आँखों देखी झलकियाँ प्रस्तुत की।

पूज्य आचार्यप्रवर का सोजतरोड़ होते हुए बिलाड़ा पदार्पण

आगमज्ञ, प्रवचन प्रभाकर, ज्ञान सुधाकर, गुण रत्नाकर, जिनशासन गौरव, व्यसन मुक्ति के प्रबल प्रेरक, **परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री 1008 श्री हीराचन्द्रजी म.सा., महान् अध्यवसायी, सरस व्याख्यानी श्रद्धेय श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा.** प्रभृति संतवृन्द ठाणा 6 ने निमाज का यशस्वी चातुर्मास पूर्ण करने के पश्चात् सोजत रोड की ओर विहार किया। मार्ग में आपश्री ने कुशालपुरा, करमावास, पीपलियाकलां, चण्डावल एवं सोजत शहर को लाभान्वित किया। 29 नवम्बर को सूखडी नदी की ओर विहार करते समय पूज्य आचार्यप्रवर के श्री

जयशेखरमुनिजी के द्वारा दर्शन किए गए। दूदू संघ महासती मण्डल के चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ। 30 नवम्बर को सोजत शहर में पाली संघ चातुर्मास प्राप्ति की भावना से उपस्थित हुआ। सोजत शहर में 02 दिसम्बर तक विराजकर सियाट होते हुए आपश्री 05 दिसम्बर को सोजत रोड पधारे। मंगल प्रवेश के समय यहाँ का हर श्रद्धालु पुलकित एवं उल्लसित भाव से नतमस्तक हो अगवानी कर रहा था। यहाँ पाली से डोसी परिवार के समस्त परिवारजन श्री कानमलजी डोसी के स्वर्गवास पर मांगलिक श्रवण करने हेतु उपस्थित हुए। 06 दिसम्बर को कोटा संघ ने चातुर्मास की विनति रखी। इस दिन शासनप्रभाविका साध्वीप्रमुखा महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. के सजग संथारे का 16 वाँ दिन था। पूज्य आचार्यप्रवर ने जोधपुर से पधारे महामंत्री श्री पूरणराजजी अबानी एवं संघाध्यक्ष श्री पी.शिखरमलजी सुराणा को खयाल दिलवाया कि साध्वीप्रमुखाजी को आज चौविहार संथारा करवा दिया जाए, रात निकाले यह भारी लग रहा है। यह समाचार सुनते ही वे जोधपुर लौट आए। परम श्रद्धेय उपाध्यायप्रवर इससे पूर्व चौविहार के प्रत्याख्यान पुनः दर्शन आगार के साथ 2.45 बजे करवा चुके थे, जो निरन्तर जारी रहे एवं मधुरव्याख्यानी श्रद्धेय श्री गौतममुनिजी द्वारा पूर्णतया प्रत्याख्यान कराये गये। साध्वीप्रमुखाजी ने हाथ जोड़ने की मुद्रा के साथ सजगता से प्रत्याख्यान स्वीकार किए। सायंकाल लगभग 4 बजकर 30 मिनट पर साध्वीप्रुखाजी द्वारा समाधिमरण का वरण किया गया। समाचार श्रवण होते ही पूज्य आचार्यप्रवर एवं संतवृन्द ने चार-चार लोगस्स का ध्यान किया। 07 दिसम्बर को प्रार्थना प्रवचन आदि कार्यक्रम स्थगित रखे गये।

08 दिसम्बर को **गुणानुवाद सभा** रखी गई, जिसमें **श्रद्धेय श्री यशवन्तमुनिजी म.सा.** ने महासतीजी के संयमी जीवन एवं संथारे पर प्रकाश डाला। श्री रमेशचन्द जी गुन्देचा, श्री हस्तीमलजी गोलेछा, मुमुक्षु सुश्री हिमांशी जी-नागौर आदि ने साध्वीप्रमुखा के गुणानुवाद करते हुए कहा कि साध्वीप्रमुखाजी का अंतिम मनोरथ फलित हुआ, जो सबके लिए प्रेरणास्पद रहेगा। ये रत्नसंघ की महासतियों में मुकुट मणि थीं। उन्होंने संथारे की शृंखला में एक अध्याय जोड़ा है। आपने प्रमाद से दूर रहकर सजगतापूर्वक संथारा ग्रहण कर कोटि कर्मों की बेड़ी को काटा है।

महान् अध्यवसायी **श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा.** ने फरमाया कि- "समाधिमरण के द्वारा 22 दण्डक के ताले लग जाते हैं। समाधिमरण सबको नहीं आता। गृहस्थों को तो क्या संतों को भी संथारा आना सरल नहीं होता। महासती विरल विभूति थी कि उन्हें 16 दिवसीय संथारे का योग बना। गुरुदेव आचार्य श्री हीरा के शासन की यह विशेषता है कि वे साधक को संथारे का पाथेय प्रदान करने की भावना रखते हैं। पूज्य प्रवर ने 21 नवम्बर को ही खयाल दिलवाया कि सजगता में आज संथारा करवाया जा सकता है। अतः श्रद्धेय श्री मनीषमुनिजी ने उसी दिन तिविहार संथारा कराया। महासतीजी ने जीवन भर शासन की प्रभावना की। हम प्रत्यक्ष रूप से वहाँ नहीं पहुँच पाये, किन्तु भावों से समाधि वृद्धि में बराबर सहयोगी रहे। कोसाणा चातुर्मास के पश्चात् पीपाड़ में पूज्य गुरुदेव हस्तीमलजी म.सा. ने उन्हें शासनप्रभाविका पद से विभूषित किया। जोधपुर में संथारे के समय 14 संतों एवं 32 सतियों का सहयोग मिला। तत्त्वचिन्तिका व्याख्यात्री महासती श्री रतनकंवरजी म.सा., चन्द्रकलाजी म.सा. आदि सतियों ने संथारा लेने से अंतिम समय तक सहयोग दिया एवं उनका मनोरथ सफल बनाया।

पूज्य आचार्यप्रवर ने महासती मैनासुन्दरीजी के जीवन वृतान्त पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए उनकी उपलब्धियों एवं चातुर्मासों का उल्लेख किया तथा इस संथारे की उत्कृष्टता को रेखांकित किया। (इसका पूर्ण प्रकाशन इसी अंक में अलग से किया गया है। पूज्य आचार्यप्रवर ने यह भी घोषणा की कि साध्वीप्रमुखाजी के महाप्रयाण के पश्चात् व्याख्यात्री महासती श्री तेजकंवरजी महाराज को इस पद पर प्रतिष्ठापित किया जाता है। अब वे **साध्वीप्रमुखा विदुषी महासती श्री तेजकंवरजी महाराज** के नाम से सम्बोधित की जायेगी। धर्मसभा में उपस्थित सभी भाई-बहनों ने चार-चार लोगस्स का ध्यान करने के पश्चात् मांगलिक श्रवण की। श्री महेन्द्रजी

गोलेछा ब्यावर के स्वर्गवास पर इसी दिन श्री हस्तीमलजी, ललितकुमारजी आदि समस्त गोलेछा परिवार के सदस्य मांगलिक श्रवण करने उपस्थित हुए। 09 दिसम्बर को पाली संघ विनति लेकर, 10 को ग्रेटर हैदराबाद कांचीगुड़ा संघ चातुर्मास प्राप्ति की भावना से, 11 को बिलाड़ा संघ पार्श्वनाथ जन्मकल्याण के प्रसंग का लाभ पाने की भावना से, 13 को शांतिलालजी भण्डारी-रायचूर के स्वर्गवास पर श्री विजयराजजी भण्डारी आदि समस्त परिवारजन मांगलिक श्रवण करने हेतु उपस्थित हुए। सोजत रोड में आतिथ्य सत्कार की भावना सराहनीय रही। सोजत वालों ने पीपलियाकलां से लेकर अटवड़ा पधारने तक विहार सेवा का लाभ लिया।

15 दिसम्बर को पाचुण्डा खुर्द में श्री यशवन्तमुनिजी म.सा. द्वारा व्यसन त्याग पर पाठशाला के बालकों को सम्बोधित किया गया। पीपाड़ संघ के सदस्य बड़ी दीक्षा की विनति लेकर उपस्थित हुए। यहाँ से सीरवियों का डेरा, वासना तथा रूण्दिया पधारे। नागौर संघ पूज्य आचार्यप्रवर के चातुर्मास की विनति लेकर एवं रणसी गाँव संघ पूज्य आचार्यप्रवर हस्तीमलजी म.सा. के 107 वें जन्मदिवस पर पधारने की विनति लेकर उपस्थित हुआ। रणसी गाँव की विनति स्वास्थ्य समाधि के साथ स्वीकार की गई। यहाँ से अटवडा एवं वरणा पधारे। यहाँ कोसाणा संघ विनति लेकर उपस्थित हुआ। बिलाड़ा के पुलिस अधीक्षक श्री विजयसिंहजी झाला ने सेवा-सन्निधि का लाभ लिया। 21 दिसम्बर को प्रातः प्याऊ क्षेत्र में तथा सायंकाल पटेल के घर में रात्रिसाधना कर 22 दिसम्बर को बलि राजा की धरा बिलाड़ा में मंगलमय पदार्पण हुआ। जबलपुर संघ चातुर्मास के लिए निवेदन करने हेतु उपस्थित हुआ।

23 दिसम्बर को बिलाड़ा में भगवान पार्श्वनाथ का जन्मकल्याणक दिवस सामायिक साधना के साथ मनाया गया। श्रद्धेय श्री यशवन्तमुनिजी, महान् अध्यवसायी श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा. ने भगवान पार्श्वनाथ के जीवन एवं दर्शन पर प्रकाश डाला। 24 दिसम्बर को पाली (इचलकरंजी) से श्री सम्पतराजजी मुकेशकुमारजी आदि कवाड़ परिवार श्री सायरचन्दजी कवाड़ के स्वर्गगमनोपरान्त मंगल पाठ श्रवण करने हेतु उपस्थित हुए। 25 दिसम्बर को गोटन संघ अक्षय तृतीया की तथा शक्तिनगर संघ चातुर्मास एवं अक्षय तृतीया की विनति लेकर चरणों में उपस्थित हुआ। यहाँ 26 से 29 दिसम्बर तक आचार्य हस्ती छात्रवृत्ति लाभार्थी बालक-बालिकाओं का **आध्यात्मिक शिक्षण शिविर** गतिमान रहा। लगभग 95 बालक-बालिकाओं ने ज्ञानार्जन एवं धर्माराधन का लाभ लिया। बिलाड़ा संघ अतिथि सेवा में तत्पर है। 27 दिसम्बर को पाली संघ अक्षयतृतीया एवं चातुर्मास की तथा पीपाड़शहर संघ पौष शुक्ला चतुदर्शी पर संत-सतियों के सान्निध्य में उपस्थित हुआ। *-जगदीश जैन*

विचरण-विहार एवं विहार दिशाएँ : एक नज़र में
(31 दिसम्बर, 2016)

परम पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. आदि ठाणा 12 शान्ति भवन, बिलाड़ा विराज रहे हैं। रणसी गाँव की ओर विहार संभावित है। उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा. आदि ठाणा 6 पावटा-जोधपुर विराज रहे हैं। श्रद्धेय श्री मनीषमुनिजी म.सा. दाधिचनगर-जोधपुर में धर्माराधन करा रहे हैं। साध्वीप्रमुखा विदुषी महासती श्री तेजकंवरजी म.सा. आदि ठाणा 8 का पल्लीवाल क्षेत्र में विचरण चल रहा है। तत्त्वचिन्तिका महासती श्री रतनकंवरजी म.सा. आदि ठाणा 10 सिद्धान्त शाला, पावटा-जोधपुर, विदुषी महासती श्री सौभाग्यवतीजी म.सा. आदि ठाणा 5 चौपासनी हाउसिंग बोर्ड, व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलताजी म.सा. आदि ठाणा 17 नेहरुपार्क स्थित सामायिक-स्वाध्याय भवन में विराज रहे हैं। विदुषी महासती श्री सुशीलाकंवरजी म.सा. आदि ठाणा 4 महावीर भवन, बारह गणगौर-जयपुर में, व्याख्यात्री महासती श्री सोहनकंवरजी म.सा. आदि ठाणा 7 महारानी फार्म-जयपुर विराज रहे हैं। व्याख्यात्री महासती श्री मनोहरकंवरजी म.सा. आदि ठाणा 3 गुलाबपुरा (भीलवाड़ा) के निकट विचरण कर रहे हैं। व्याख्यात्री महासती श्री सरलेशप्रभाजी म.सा. आदि ठाणा 4 का पुष्कर रोड़-अजमेर में विचरण चल रहा है। व्याख्यात्री

महासती श्री स्नेहलताजी म.सा. आदि ठाणा 3 जैन स्थानक मण्डी हिण्डौन शहर में विराज रहे हैं। राजस्थान से बाहर- व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबालाजी म.सा. आदि ठाणा 6 वाकोद (महा.) में विराज रहे हैं। व्याख्यात्री महासती श्री निःशल्यवतीजी म.सा. आदि ठाणा 5 गंगावती विराज रहे हैं। होसपेट की ओर विहार संभावित है। व्याख्यात्री महासती श्री मुक्तिप्रभाजी म.सा. आदि ठाणा 4 ढेवरा मोड़-दिल्ली विराज रहे हैं, यहाँ से गोहाना (हरियाणा) की ओर विहार संभावित है। सेवाभावी महासती श्री विमलेशप्रभाजी म.सा. आदि ठाणा 4 पाचोर विराज रहे हैं, यहाँ से बीड़ (महा.) की ओर विहार संभावित है। व्याख्यात्री महासती श्री रुचिताजी म.सा. वासदा विराज रहे हैं। व्याख्यात्री महासती श्री मुदितप्रभाजी म.सा. आदि ठाणा 3 पारोला से मुकटी की ओर बढ़ रहे हैं। अधिक जानकारी के लिए संघ कार्यालय, घोड़ों का चौक, जोधपुर से सम्पर्क करें। सम्पर्क सूत्रः- 0291-2636763, 2641445

पुरस्कार राशि बैंक खाते में प्रेषित की जाएगी

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल द्वारा 'बनें आगम अध्येता' योजना के अन्तर्गत खुली पुस्तक परीक्षाओं में भाग लेने वाले प्राप्तांक 70 तथा इससे ऊपर के प्राप्तांक वाले विजेता प्रतिभागियों की पुरस्कार राशि उनके बैंक खाते में नेट द्वारा हस्तान्तरित की जायेगी। उत्तराध्ययनसूत्र (भाग-3) का परिणाम सभी प्रतिभागियों के मोबाइल नम्बर पर मैसेज द्वारा भिजवा दिया गया है। तीनों भागों के प्राप्तांक सम्मिलित कर उत्तीर्ण प्रतिभागियों का पारितोषिक बैंक के माध्यम से भिजवाया जायेगा। अत: प्रतियोगिता विजेता प्रतिभागी अपना नाम, स्थान का उल्लेख करने के साथ निम्न जानकारी भिजवाने का श्रम करावें :- Name of Bank, Name of Account holder, Bank Account Number, Bank Place, Bake IFS code, Micr Code, Mobile No. *-बीना मेहता-महासचिव*

जोधपुर में त्रिदिवसीय बालिका संस्कार शिविर सम्पन्न

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक संस्कार केन्द्र, जोधपुर द्वारा 13 वर्ष से अधिक उम्र की बालिकाओं के लिए व्याख्यात्री महासतीजी श्री ज्ञानलताजी म.सा. के सान्निध्य में 27 से 29 दिसम्बर 2016 तक आयोजित त्रिदिवसीय बालिका संस्कार शिविर में लगभग 80 बालिकाओं तथा 5 अध्यापिकाओं ने भाग लिया। व्याख्यात्री महासती श्री चारित्रलताजी म.सा., व्याख्यात्री महासती श्री भाग्यप्रभाजी म.सा. आदि साध्वी-मण्डल ने सरल, सुबोध भाषा में विविध उदाहरणों के साथ बालिकाओं के हृदय को छूते हुए सूत्र व तत्त्व का ज्ञान दिया और जैन धर्म की मौलिक विशेषताओं का निरूपण किया। यह शिविर बालिकाओं के लिए अत्यन्त उपयोगी रहा। महासतीवर्या के उद्बोधन से प्रभावित होकर अनेक बालिकाओं ने रात्रि भोजन व कंदमूल त्याग, माला जपना, सामायिक व स्वाध्याय करने से संबंधित विविध नियम सहर्ष अंगीकार किये। *-राजेश भण्डारी, सचिव*

करुणा अन्तरराष्ट्रीय के 19 वें वार्षिक अधिवेशन में आचार्य हस्ती करुणा अवार्ड एवं राष्ट्रीय करुणा क्लब अवार्ड का वितरण

करुणा अन्तरराष्ट्रीय के 19 वें वार्षिक अधिवेशन का आयोजन 27-28 दिसम्बर, 2016 को चेन्नई में हुआ, जिसमें 'सुराणा एण्ड सुराणा इण्टरनेशनल एटोर्नीज चेरिटेबल ट्रस्ट' के सौजन्य से 6,25,000/- की राशि के आचार्य हस्ती करुणा अवार्ड के रूप में अनेक सम्मान प्रदान किए गए। वीरायतन की आचार्य चन्दना तथा भगवान महावीर कैंसर चिकित्सालय, जयपुर के संचालक दम्पती नवरतन कोठारी एवं अनिला कोठारी को **आचार्य हस्ती करुणा-रत्न अवार्ड** प्रदान किये गये। आचार्य चन्दना के लिए साध्वी संघमित्रा ने सम्मान प्राप्त किया। इस मौके पर साहित्यकार डॉ. दिलीप धींग को वर्ष-2015 का **आचार्य हस्ती करुणा वक्ता अवार्ड** प्रदान किया गया। 2016 का वक्ता अवार्ड विजया कोटेचा को दिया गया।

आचार्य हस्ती करुणा संस्था अवार्ड चेन्नई के आदिनाथ जैन ट्रस्ट और दिल्ली के अमृत प्रतिष्ठान को; **आचार्य हस्ती करुणा शिक्षिका अवार्ड** श्री चन्दाबाई पगारिया जैन स्कूल, चेन्नई की प्राचार्य टी. विजयलक्ष्मी तथा चिन्मया विद्यालय, विरुगम्बाक्कम, चेन्नई की शिक्षिका भवानी महेन्द्रन को; **आचार्य हस्ती करुणा युवा अवार्ड** चेन्नई के मेथ्यू जोस एवं जोधपुर के विनीत भण्डारी को; **आचार्य हस्ती करुणा लेखक अवार्ड** दिल्ली के सुगन सी. जैन और पुदुचेरी के एन. राधाकृष्णन को, **आचार्य हस्ती करुणा सेवा अवार्ड** मैसूर के प्रवीणकुमार जैन एवं जोधपुर की अनिता मेहता को; **आचार्य हस्ती करुणा विद्यालय अवार्ड** मोंटेसरी हाई स्कूल, विद्यानगर, करनूल को; **आचार्य हस्ती करुणा नियोक्ता अवार्ड** कोचीन के सोहन रॉय और वी. ट्रांस इंडिया के अशोक शाह को एवं **आचार्य हस्ती करुणा कर्मचारी अवार्ड** चित्तौड़गढ़ के दिलीप गांधी को प्रदान किये गये।

26 उत्कृष्ट करुणा क्लबों को 1,50,000/- की राशि से 'जसुदबेन सूरजमलभाई मेहता फाण्उडेशन' के सौजन्य से सम्मानित किया गया। 19 विधार्थियों को दयावान अवार्ड प्रदान किए गए।

ये सम्मान करुणा अन्तरराष्ट्रीय के पदाधिकारियों की उपस्थिति में मुख्य अतिथि मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश एम. जयचन्द्रन, सम्मानित अतिथि सुराणा एंड सुराणा इंटरनेशनल अटोर्नीज के पी.एस. सुराणा के हाथों प्रदान किये गये। इस अवसर पर अ. भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष पी. एस. सुराणा ने करुणा अन्तरराष्ट्रीय के चेयरमैन दुलीचन्द जैन कृत पुस्तक 'मैं महावीर बोल रहा हूँ' का विमोचन किया और पहली प्रति समाजसेवी रमेश मूथा को दी। पी.एस. सुराणा ने आचार्य हस्ती के करुणामय व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला, जिनके नाम पर इन प्रतिष्ठित करुणा सम्मानों का प्रवर्तन किया गया है। उन्होंने आचार्य चंदना और कोठारी दंपती के सेवा कार्यों से प्रेरणा लेने का आह्वान किया। अध्यक्ष कैलाशमल दुगड़ ने स्वागत भाषण दिया। महासचिव पदमकुमार टाटिया ने धन्यवाद ज्ञापित किया। लक्ष्मी नीलकंठन और जयंतीलाल तलेसरा ने संचालन किया।

कन्नड़ विश्वविद्यालय में विद्वत्संगोष्ठी

कन्नड़ विश्वविद्यालय, हंपी में 8 से 11 दिसम्बर को 'कन्नड़-प्राकृत : परम्परा और प्रभाव' विषय पर अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में हिन्दी, कन्नड़ और अंग्रेजी में शोधपत्र प्रस्तुत हुए। शान्त, सुरम्य व नैसर्गिक वातावरण में सम्पन्न छह सत्रों के मुख्य विषय थे- भारतीय विचार परम्परा और प्राकृत वाङ्मय, प्राकृत व्याख्या साहित्य और सांस्कृतिक विरासत, प्राकृत और अन्य भारतीय भाषाओं के अन्तःसम्बन्ध, प्राकृत-कन्नड़ काव्य परम्परा, प्राकृत पांडुलिपि : संपादन व अध्ययन, भारतीय दर्शन को प्राकृत का योगदान। संगोष्ठी में डॉ. हम्पा नागराजैया, डॉ. जयकुमार उपाध्ये, आई.सी.पी.एस.आर. के निदेशक डॉ. दिलीप धींग, फ्रांस की डॉ. क्रिस्टीन चोजनकी, डॉ. जिनेन्द्र जैन सहित चौबीस विद्वानों ने प्रस्तुति दी। विश्वविद्यालय के जैन साहित्य व संस्कृति अध्ययन केन्द्र के परियोजना निदेशक डॉ. एस.पी. पद्मप्रसाद ने बताया कि हिन्दी और अंग्रेजी के शोधपत्र कन्नड़ में अनूदित करके प्रकाशित किये जायेंगे।

जोगणियाँ माताजी में निःशुल्क चिकित्सा शिविर

जयपुर- श्री कन्हैयालाल हीरावत चेरिटेबल ट्रस्ट, जयपुर के श्री रतेन्द्र हीरावत मेमोरियल हॉस्पिटल जोगणियाँ माताजी तहसील बेगूं, जिला चित्तौड़गढ़ में 19 जनवरी, 2017 से प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष 36 वां विशाल निःशुल्क चिकित्सा शिविर लगाया जा रहा है। शिविर में राजस्थान राज्य की भ्रमणशील शल्य चिकित्सा इकाई जयपुर तथा राज्य सरकार की सहयोगी इकाइयाँ स्त्री-पुरुषों की जाँच, एक्सरे, सोनोग्राफी आदि के पश्चात् उपयुक्त पाये जाने वाले रोगियों के विभिन्न प्रकार के ऑपरेशन, आँखों की चिकित्सा एवं नेत्र प्रत्यारोपण किए जायेंगे। इसमें दवाई, ऑपरेशन, लेंस आदि

सब निःशुल्क हैं। मरीजों के आवास, बिस्तर, भोजन आदि तथा साथ वाले सहयोगी को भोजन व्यवस्था ट्रस्ट निःशुल्क प्रदान करता है। प्रतिवर्ष करीब 5000 से 6000 स्त्री-पुरुषों की जाँच के उपरान्त दवाइयाँ व स्वास्थ्य निर्देश तथा चयनित 1000-1500 स्त्री-पुरुषों के विभिन्न प्रकार के ऑपरेशन होते रहे हैं। *-पारसचन्द हीरावत, ट्रस्टी*

निःशुल्क शल्य चिकित्सा शिविर का आयोजन

श्री वर्द्धमान जैन रिलीफ सोसायटी जोधपुर द्वारा स्व. डॉ. बिमलाजी भण्डारी की पुण्य स्मृति में 17 फरवरी, 2017 को निःशुल्क शल्य चिकित्सा शिविर आयोजित किया जायेगा। शिविर में हर्निया, मस्सा, भगन्दर, एपेंडिक्स, फिस्टुला आदि के ऑपरेशन किये जायेंगे। शिविर में डॉ. राम गोयल-जोधपुर, डॉ. सौरभ गोयल-अहमदाबाद, डॉ. रमेश सेठिया-जोधपुर आदि अनुभवी चिकित्सकों की सेवाएँ प्राप्त होंगी। *-पूरणराज अबानी, अध्यक्ष*

संक्षिप्त समाचार

फूलियाँकला- व्याख्यात्री महासती श्री मनोहरकंवरजी म.सा. आदि ठाणा 3 का वर्षावास प्रभावी रहा। यहाँ ज्ञान, दर्शन, चारित्र में अभिवृद्धि के साथ तपस्या का ठाट रहा। श्री शक्तिसिंहजी चौधरी एवं श्री लादुसिंहजी चौधरी ने सजोड़े आजीवन शीलव्रत अंगीकार किया। यहाँ 53 तेले, 5, 8, 9,11,15 की तपस्या के साथ 31 दिवसीय मासक्षपण तप भी सम्पन्न हुआ। एक एकासन का मासक्षपण हुआ। मात्र 12 जैन परिवार होते हुए भी सभी ने बढ़-चढ़ कर उत्साह दिखाया। *-धर्मीचंद चौधरी*

जोधपुर- अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के महामंत्री श्री पूरणराज जी अबानी 27 नवम्बर, 2016 को आयोजित सोसायटी की साधारण सभा में श्री वर्द्धमान जैन रिलीफ सोसायटी के तीसरी बार निर्विरोध अध्यक्ष मनोनीत हुए। पुनः निर्वाचित अध्यक्ष महोदय ने बताया कि सन् 1976 में स्थापित हॉस्पिटल की नई शाखा हेतु नवमी चौपासनी रोड पर एक जमीन खरीदी गई है, जिसके तीन मंजिला भवन में मेटरनिटी होम के साथ ही अत्याधुनिक प्रयोगशाला बनाना भी प्रस्तावित है।

नई दिल्ली- केन्द्रीय दूरसंचार राज्यमंत्री श्री मनोज सिन्हा ने 14 दिसम्बर 2016 को आयोजित एक समारोह में दिगम्बर जैन आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज पर भारत सरकार की ओर से 5 रुपये के डाक टिकिट का विमोचन किया। आचार्य विमलसागरजी द्वितीय दिगम्बर जैन संत हैं जिनकी स्मृति में डाक टिकिट जारी किया गया है। इससे पूर्व आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज पर वर्ष 2013 में डाक टिकिट जारी हुआ था।

बधाई

उदयपुर- झारखण्ड केडर के अधिकारी राजीव जैन को इंटेलिजेंस ब्यूरो (आई.बी.) का प्रमुख बनाया गया है। 1980 बैच के आई.पी.एस. अधिकारी श्री राजीव जैन आई.बी. में विशेष निदेशक के पद पर कार्यरत थे। राष्ट्रपति पुलिस पदक से सम्मानित राजीव जैन की दो वर्ष के लिए नियुक्ति की गई।

चेन्नई- साहित्यकार डॉ. दिलीप धींग को 23 दिसम्बर 2016 को 'अंबालाल हिंगड़ साहित्य सम्मान-2016' से

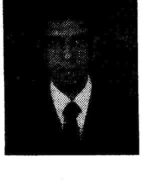

सम्मानित किया गया। राजकुमार जैन राजन फाउण्डेशन, आकोला, जिला-चित्तौड़गढ़ (राज.) द्वारा प्राकृत, हिन्दी व जैन साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए प्रदत्त इस सम्मान में उन्हें सम्मान-राशि, प्रशस्ति-पत्र, स्मृति चिह्न प्रदान किये गये। उन्हें 27 दिसम्बर 2016 को करुणा अन्तरराष्ट्रीय के 19 वें अधिवेशन में 'आचार्य हस्ती करुणा वक्ता अवार्ड-2015' से भी

सम्मानित किया गया। *-डॉ. एस. कृष्णचंद चोरड़िया, महासचिव*

बून्दी- ऐलेन केरियर इंस्टीट्यूट की ओर से आयोजित 'प्रतिभा खोज परीक्षा' के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्तर पर कक्षा 11 वीं विज्ञान-गणित की परीक्षा में श्रेयांस नागोरी सुपुत्र डॉ. जितेशजी एवं सुपौत्र डॉ. एस.एल. नागोरी ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। उन्हें दो लाख रुपये का चैक, गोल्ड मेडल एवं वरीयता प्रमाण-पत्र से सम्मानित किया। *-मोहनलाल भडकत्या*

इलकल- वरिष्ठ पत्रकार श्री सज्जनराज जी मेहता का पत्रकारिता क्षेत्र में की गई उत्कृष्ट सेवा के लिए नगरसभा की ओर से 01 नवम्बर 2016 को कन्नड़ राज्योत्सव के अवसर पर सम्मान किया गया। *-संदीप मेहता*

श्रद्धाञ्जलि

ब्यावर- संघसेवी श्रावकरत्न श्री महेन्द्रकुमारजी गोलेछा सुपुत्र स्व. श्री मीठालालजी गोलेछा का 05 दिसम्बर 2016 को स्वर्गगमन हो गया। आपने उपाध्यायप्रवर के वि.सं. 2066 के चातुर्मास में श्री स्थानकवासी जैन वीर संघ, ब्यावर का मंत्री पद बखूबी संघ की रीति नीति के अनुसार निभाया था। वि.सं. 2067 के फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को श्रद्धेय श्री आशीषमुनिजी म.सा. एवं महासती श्री पूनमश्रीजी के दीक्षा प्रसंग पर वहाँ विराजित संत-सतियों की सेवा का लाभ लिया। विहार सेवा में भी आप सदैव अग्रणी भूमिका निभाते थे। सम्पूर्ण गोलेछा परिवार रत्नसंघ के प्रति समर्पित परिवारों में अग्रणी रहा है। गुरु भक्त श्री हस्तीमल जी गोलेछा आपके चाचा हैं। *-संजय डोसी*

जलगांव- धर्मनिष्ठ, श्रद्धानिष्ठ सुश्राविका श्रीमती केशरबाईजी धर्मपत्नी स्व. श्री गुलाबचन्दजी संघवी का 85 वर्ष की आयु में 18 दिसम्बर 2016 को देवलोकगमन हो गया। वे नियमित सामायिक-स्वाध्याय करने वाली चिन्तनशील श्राविका थीं। उन्होंने रात्रि भोजन त्याग, जमीकन्द का त्याग आदि अनेक त्याग-प्रत्याख्यान ग्रहण कर रखे थे। 48 वर्ष की वय में आजीवन शीलव्रत ग्रहण कर लिया था। उस समय की सातवीं कक्षा उत्तीर्ण बहू से परिवार को सेवा की उम्मीद नहीं थी, किन्तु आपने दादी सासू, सास-ससुर, काकी सास-ससुर आदि सब की समर्पण भाव से सेवा की। सुश्रावक श्री भंवरलालजी, कंवरलालजी, जवाहरलालजी, कमलकिशोरजी, श्रीमती चन्दनबालाजी मेहता एवं श्रीमती देवबालाजी भण्डारी की माताजी ने समस्त परिवार को अच्छे संस्कार दिए एवं उन्हें हर तरह से योग्य बनाया। धर्मनिष्ठ श्राविका ने स्वयं अध्ययन कर स्वाध्यायी के रूप में पर्युषण में अनेक वर्षों तक सेवाएँ दीं। वर्षीतप, अठाई, क्षीर-समुद्र तप आदि अनेक प्रकार के तप किए। उन्होंने सामाजिक एवं पारिवारिक रुढ़ियों में बदलाव किया। उनके नेतृत्व में 23 सदस्यों का सम्मिलित परिवार संयुक्त रूप से रह रहा है। आपका सम्पूर्ण परिवार संघ द्वारा संचालित गतिविधियों एवं प्रवृत्तियों से निष्ठापूर्वक जुड़ा हुआ है। *-कंवरलाल संघवी*

चेन्नई- तमिल जैन विद्वान् श्री जे. अप्पंडिराजन का तिरुवन्नामलै के विशाखाचार्य तपो निलयम् में चौदह दिन के संथारे के साथ 04 दिसम्बर 2016 को समाधिमरण हो गया। अपना अंतिम समय नजदीक जानकर 76 वर्षीय अप्पंडिराजन ने 20 नवम्बर को स्वेच्छा संलेखना-संथारा स्वीकार कर लिया था। दी टाइम्स ऑफ इण्डिया (06-

12-2016) में प्रकाशित समाचार के अनुसार संथारा-साधक ने देह-त्याग के एक घण्टे पूर्व पद्मासन में बिठाने का अनुरोध किया। उन्होंने अंतिम क्षण तक सजग रह आत्मध्यान में देहत्याग किया। छोटी-बड़ी 76 पुस्तकों के लेखक-संपादक-अनुवादक अप्पंडिराजन स्कूल प्राचार्य थे। उन्होंने तत्त्वार्थ सूत्र, समयसार, रत्नसार आदि ग्रंथों का तमिल में अनुवाद किया। तमिल भाषा के तीर्थंकर महाकाव्य पर टीका भी लिखी। तमिल जैन संत अडिगल के नाम से साहित्यिक अकादमी भी बनाई। *-डॉ. दिलीप धींग*

अलीगढ़-रामपुरा- दृढ़धर्मी सुश्रावक स्व. श्री वैद्य श्री गोपाललाल जी जैन की धर्मनिष्ठ माताश्री **श्रीमती रतनदेवीजी जैन** धर्मपत्नी स्व. श्री सूरजमलजी जैन का 91 वर्ष की उम्र में 22 नवम्बर 2016 को संथारापूर्वक देवलोकगमन हो गया। आप नियमित सामायिक एवं नवकारसी करने वाली श्राविका थीं। दो वर्ष आपने एकान्तर तप किया तथा प्रत्येक अष्टमी एवं चतुर्दशी को विशेष प्रत्याख्यान करती थीं। कई दशकों से आजीवन शीलव्रत ले रखा था। सन्त-सतियों की सेवा में भी जम्बूकुमारजी, जशकरणजी, धर्मेन्द्रजी आदि का संस्कारित परिवार सदैव तत्पर रहता है। *-धर्मेन्द्र जैन*

पाढरंकवड़ा (महा.)- गुरुभक्त सुश्रावक श्री पुखराजजी केशरीमलजी पितलीया का 03 दिसम्बर 2016 को स्वर्गगमन हो गया। आप मिलनसार, उदार एवं करुणावान धर्मनिष्ठ श्रावक थे। समाज के प्रति आपका हर कार्य में बढ़-चढ़कर योगदान रहता था। सामायिक-प्रतिक्रमण नियमित करने के साथ संत-सतियों की सेवा में अग्रणी रहते थे। *-सुनील पितलीया*

मैसूर- श्रद्धानिष्ठ सुश्राविका श्रीमती सुराजकंवरजी खाबिया धर्मपत्नी श्री पारसमलजी खाबिया का 07 नवम्बर 2016 को संथारापूर्वक समाधिमरण हो गया। आप नियमित सामायिक-स्वाध्याय एवं व्रत-नियम करती थीं। रात्रि चौविहार का त्याग था। संत-सतीवृन्द की सेवा में तत्पर रहती थीं। सन् 2004 में आपने आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के मुखारविन्द से अक्षय तृतीया पर शीलव्रत ग्रहण किया था।

अलीगढ़-रामपुरा- तपसाधिका सुश्राविका श्रीमती संजूलता जी जैन धर्मपत्नी श्री रविन्द्रकुमारजी जैन (पाटोली वाले) का 22 दिसम्बर 2016 को 41 वर्ष की अल्प आयु में स्वर्गगमन हो गया। धर्मनिष्ठ श्राविका ने आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के सन् 2012 के जयपुर चातुर्मास में मासक्षपण तप सम्पन्न किया था। नियमित सामायिक एवं स्वाध्याय करने वाली श्राविका ने स्थानीय श्राविका मण्डल के सचिव पद को शोभित किया।

नदबई- कर्मठ कार्यकर्ता, संघसेवी श्री मोहनलालजी बागपतिया का 60 वर्ष की वय में 14 दिसम्बर 2016 को स्वर्गारोहण हो गया। आपने इस वर्ष श्री साध्वीप्रमुखा श्री तेजकंवरजी म.सा. के चातुर्मास में तन, मन, धन से सेवा का लाभ लिया। चातुर्मास समिति में आपने अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। आप श्री जैन रत्न युवक परिषद् नदबई के अध्यक्ष, श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के संरक्षक एवं अग्रवाल समाज नदबई के अध्यक्ष पद पर रहे। आपके सुपुत्र युवारत्न संवेद जैन कर्मठ कार्यकर्ता हैं। *-नरेशचन्द जैन, मंत्री*

धुळे (महा.)- सुश्राविका सौ. जयन्तिजी हुकमचन्दजी कुचेरिया का 73 वर्ष की वय में 19 अक्टूबर को निधन हो गया। धर्मनिष्ठ श्राविका उदार एवं समन्वयशील थीं। कुचेरिया परिवार ने उनकी स्मृति में अनेकविध दान पुण्य किया।

अजमेर- तपसाधिका श्रीमती तेजकुमारीजी धर्मपत्नी श्री चन्द्रसिंहजी चौधरी का 19 नवम्बर 2016 को स्वर्गवास हो गया। उन्होंने बेला-तेला, अठाइयाँ 9,11,21, मासक्षपण एवं 7 वर्ष तक वर्षीतप (एकान्तर तप) किया तथा सन् 1969 में शीलव्रत के नियम श्री आनन्दऋषिजी म.सा से अंगीकार किए। वे 4-5 सामायिक नित्य करती थीं।

बरगंमा (हिण्डौनसिटी)- धर्मनिष्ठ समाजसेवी कर्त्तव्यनिष्ठ सुश्रावक श्री बिरधीचन्दजी जैन (पल्लीवाल) का 25 नवम्बर 2016 को 86 वर्ष की वय में स्वर्गवास हो गया। मधुरवाणी, निष्कपट मन, सरल और हँसमुख स्वभाव से

आपका समाज में विशिष्ट स्थान था। आप गुरु-भक्त थे। आपका जीवन सादगी एवं सेवाभावना से युक्त था।

थांवला- संघनिष्ठ सुश्रावक श्री सुरेशचन्दजी डूंगरवाल सुपुत्र स्व. श्री फतेहराजजी डूंगरवाल का 54 वर्ष की वय में निधन हो गया। आप सरल स्वभावी एवं मिलनसार व्यक्तित्व के धनी थे।

जयपुर- सुश्राविका श्रीमती चन्द्रकलाजी धर्मपत्नी स्व. श्री मुंशीलालजी जैन का 30 नवम्बर 2016 को परलोकगमन हो गया। आप प्रतिदिन सामायिक-स्वाध्याय, रात्रिभोजन-त्याग के नियम रखती थीं। आपका जीवन सहज, सरल एवं सादगीपूर्ण था। आपके ज्येष्ठ सुपुत्र श्री अशोकजी एवं मंझले सुपुत्र श्री धर्मचन्दजी ने सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल को अपनी सेवाओं से लाभान्वित किया। श्री मदनलालजी एवं अभिषेकजी भी संघ सेवा में तत्पर रहते हैं।

शाहदरा- दृढ़धर्मी श्राविका श्रीमती शान्तिजी धर्मपत्नी स्वर्गीय श्री शिखरचन्दजी जैन (एलम वाले) का 72 वर्ष की अवस्था में 19 नवम्बर 2016 को समाधिभावों में मरण हो गया। आप ज्ञानगच्छ में दीक्षित श्री सुषमाजी म.सा. की सांसारिक माताजी थीं। आप सरल स्वभावी, प्रतिदिन चार-पाँच सामायिक कर स्वाध्याय-संवर में जीवन जीने वाली श्राविका थीं। *-मनोज जैन*

कोटा- वरिष्ठ श्राविका श्रीमती केशरकंवरजी जैन धर्मपत्नी सुश्रावक श्री तेजमलजी जैन (सारोला वाले) का निधन हो गया। आप साधु-संतों की सेवा में हमेशा तत्पर रहती थीं तथा नित्य सामायिक, प्रतिक्रमण करती थीं।

रायचूर- धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री शान्तिलालजी भण्डारी सुपुत्र श्री धनराजजी भण्डारी का 80 वर्ष की उम्र में 26 नवम्बर 2016 को महाप्रयाण हो गया। आप न केवल प्रतिष्ठित व्यापारी थे, अपितु धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। आप नियमित रूप से सामायिक-स्वाध्याय करते थे।

वजीरपुर (सवाईमाधोपुर)- धर्मपरायण सुश्रावक श्री गंगाप्रसादजी जैन का 96 वर्ष की आयु में 25 अक्टूबर 2016 को स्वर्गवास हो गया। सरल स्वभावी सुश्रावकजी नियमित सामायिक-स्वाध्याय करते थे।

वजीरपुर (सवाईमाधोपुर)- सुश्रावक श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन सुपुत्र स्व. श्री गंगाप्रसादजी जैन का 74 वर्ष की आयु में 07 नवम्बर 2016 को स्वर्गवास हो गया। आप नित्य प्रतिदिन सामायिक स्वाध्याय करते थे एवं संत-सतियों के प्रति आपकी अपूर्व श्रद्धा-भक्ति थी।

भीलवाड़ा- ओजस्वी वक्ता, सुश्रावक श्री सौभाग्यमलजी मेहता सुपुत्र श्री मंशालालजी मेहता (मूलनिवासी बड़ी सादड़ी) का 87 वर्ष की उम्र में संथारे सहित समाधिमरण हो गया। आप मिलनसार, प्रखरवक्ता एवं अच्छे धर्मप्रेरक श्रावक थे। आपका जीवन दयालुता, सहजता, स्पष्टवादिता व सरलता जैसे गुणों से सुवासित था।

पुणे- सुश्राविका श्रीमती चंचल कान्तिलालजी चोरडिया का 80 वर्ष की वय में 27 नवम्बर 2016 को समाधिमरण हो गया। आपके पुत्र श्री संजयजी 'जैन जागृति' पत्रिका के सम्पादक हैं। इस पत्रिका में आपका योगदान रहा है। धार्मिक व स्नेह स्वभाव वाली श्राविकाजी को संचेती ट्रस्ट द्वारा 2010 में 'आदर्श माता पुरस्कार' मिला है।

भिनाय, अजमेर (राज.)- सुश्रावक श्री समरथसिंहजी सुराणा का 06 दिसम्बर 2016 को स्वर्गवास हो गया। वे सरल स्वभावी शांतचित्त, कर्त्तव्यनिष्ठ, समाजसेवी थे। प्रतिदिन सामायिक आदि का नियम था।

अजमेर- श्रीमती प्रेमकंवरजी सुराणा धर्मपत्नी डॉ. प्रेमसुखजी सुराणा का 25 नवम्बर 2016 को स्वर्गवास हो गया। वे धर्मपरायण, सरल स्वभावी सुश्राविका थीं। *-रंजनकला सुराणा*

भरतपुर- धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री कपूरचन्दजी जैन का 85 वर्ष की आयु में 10 नवम्बर 2016 को स्वर्गवास हो गया। आप रत्नसंघीय महासती विजयश्रीजी म.सा. के सांसारिक दादाजी हैं। आप प्रतिदिन स्वाध्याय करते थे।

उपर्युक्त दिवंगत आत्माओं के प्रति सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जिनवाणी-परिवार तथा अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके परिवारजनों के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं।

साभार-प्राप्ति-स्वीकार

1000/-जिनवाणी पत्रिका की आजीवन (अधिकतम 20 वर्ष)

सदस्यता हेतु प्रत्येक

क्रम संख्या 15746 से 15776 तक 31 सदस्य बने।

'जिनवाणी' मासिक पत्रिका हेतु साभार प्राप्त

11000/- श्री गुदड़मलजी, महावीरचन्दजी खाबिया, मैसूर, पूजनीय मातुश्री श्रीमती सूरजकँवरजी धर्मसहायिका स्व. श्री पारसमलजी खाबिया की पुण्य स्मृति में।

5100/- श्रीमान् नौरतनमलजी विनोदजी नवनीतजी मेहता, जोधपुर। अपनी दौहित्री आयुष्मती गरिमा (सुपौत्री श्री गौतमचंदजी एवं सुपुत्री श्री श्रवणकुमारजी रूणवाल, ब्यावर का शुभ विवाह आयुष्यमान चिरंजीव धर्मेशजी (सुपौत्र श्री कन्हैयालाल जी एवं सुपुत्र श्री राजकुमारजी नाहर, अजमेर) के साथ 23 नवम्बर 2016 को सानन्द सम्पन्न होने पर।

5000/- श्रीमती पुष्पा जी सिंघवी, जोधपुर। श्री उदयराजजी सिंघवी एवं श्रीमती पुष्पा जी सिंघवी के 17 जनवरी, 2017 को विवाह के 50 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में।

5000/- श्री पदमचन्दजी मुणोत, जयपुर, सुपौत्र सौरभजी सुपुत्र श्री महेन्द्रजी मुणोत के 27 अक्टूबर 2016 को पुत्ररत्न प्राप्त होने की खुशी में सप्रेम।

2100/- श्रीमती दाखाबाईजी जैन, अलीगढ़-रामपुरा, सुपौत्र शुभांशुजी सुपुत्र श्रीमती उर्मिलाजी-सोहनलालजी जैन अलीगढ़-रामपुरा वाले का B.Tech (Civil) IIT, New Delhi से उत्तीर्ण करने के पश्चात् Indian Engineering Services 2016 में चयन होने की खुशी में सप्रेम।

2100/- श्री उम्मेदराजजी, शांतिलालजी, प्रकाशचन्दजी, सिद्धार्थजी डूंगरवाल, थाँवला-नागौर, श्री सुरेशचन्दजी डूंगरवाल का 4 दिसम्बर 2016 को स्वर्गवास हो जाने पर उनकी पुण्य स्मृति में।

1101/- श्री त्रिलोकचन्दजी जैन, मण्डी रोड़-सवाईमाधोपुर, सुपुत्र श्री अक्षयजी जैन (हैप्पी) के आर.आर.बी. द्वारा आर.एम.जी.बैंक में पी.ओ. के पद पर रीजनल ऑफिस उदयपुर में नियुक्ति होने के उपलक्ष्य में सप्रेम।

1101/- श्री त्रिलोकचन्दजी जैन, मंडी रोड़-सवाईमाधोपुर, सुपौत्री स्वरा सुपुत्री राहुलजी जैन (भायन्दर-ईस्ट) मुम्बई के 26 दिसम्बर 2016 को जन्म दिवस के उपलक्ष्य में सप्रेम।

1101/- स्व.वैद्य श्री गोपाललालजी जैन की माताजी श्रीमती रतनदेवी की पुण्यस्मृति में श्री जम्बूकुमारजी, जशकरणजी, धर्मेन्द्र कुमारजी जैन, अलीगढ़-रामपुरा द्वारा सप्रेम।

1100/- श्री पारसचन्दजी, अभिनन्दनजी जैन (एण्डवा वाले), बजरिया-सवाईमाधोपुर, चि. देवेन्द्र का शुभविवाह सौ.कां. पायल के संग 23 नवम्बर 2016 को सुसम्पन्न होने की खुशी में।

1100/- श्री महावीर प्रसादजी, पारसचन्दजी जैन (बाबई वाले), सुमेरगंजमण्डी, चि. कविश का शुभविवाह सुसम्पन्न होने की खुशी में सप्रेम।

1100/- श्री अशोक कुमारजी जैन (आलनपुर वाले), जयपुर की ओर से सप्रेम।

1100/- मैसर्स महेन्द्र सेव भण्डार एवं परिवार, इन्दौर, श्री गंगाधरजी जैन (उनियारा वाले) की पुण्य स्मृति में।

1100/- श्री महेश कुमारजी, आनन्द कुमारजी जैन, इन्दौर, चि. आनन्दजी के विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में सप्रेम।

1100/- श्री गोविन्द सहायजी जैन (चकेरी वाले), सवाईमाधोपुर, प्रोग्रामर पद पर पदोन्नति होने के उपलक्ष्य में सप्रेम।

1100/- श्री अशोक कुमारजी, धर्मचन्दजी, मदनलालजी जैन (हरसाना वाले), जयपुर, पूजनीया माताश्री श्रीमती चन्द्रकलाजी जैन का 30 नवम्बर 2016 को स्वर्गवास हो जाने पर उनकी पुण्य स्मृति में।

1100/- श्रीमती सुभद्रा जी धर्मपत्नी श्री कांतिलालजी धारीवाल, पाली (मारवाड़), अपने भ्राता श्री आनन्दराजजी तलेसरा के 25 सितम्बर 2016 को स्वर्गवास होने पर उनकी पावन स्मृति में।

स्वाध्याय संघ, जोधपुर को प्राप्त साभार

10000/- श्री रोहित जी पुत्र श्री नरेन्द्रजी बुबकिया, जोधपुर, सहयोग हेतु।

10000/- श्रीमती आभा जी धर्मपत्नी श्री नरेन्द्र जी बुबकिया, जोधपुर, सहयोग हेतु।

5500/- श्री महिपालचंदजी दिलीपजी खुशबूजी भंडारी, चेन्नई (शासन प्रभाविका साध्वी प्रमुखा महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. के सांसारिक परिवार से)

5000/- श्रीमती पुष्पा जी लोढ़ा, जोधपुर। सहयोग हेतु।

1551/- श्योरपुरकलां पर्युषण सहयोग।

1100/- श्री चंचलमलजी राजेशजी राहुलजी गांग, जोधपुर, श्रीमती केसरजी गांग के 24 जनवरी 2017 को प्रथम पुण्य स्मृति दिवस के उपलक्ष में।

1000/- श्रीमती उच्छब कंवर जी मुणोत। सहयोग हेतु।

1100/- श्री महावीर प्रसादजी, पारसचन्दजी जैन (बाबई वाले), सुमेरगंजमण्डी, चि. कविश का शुभविवाह सुसम्पन्न होने की खुशी में सप्रेम।

अ.भा.श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर को साभार प्राप्त

50,000/- श्री विपुलजी, विमलाजी, प्रमिलाजी, पायलजी, मानजी, वियानजी एवं समस्त ढाबरिया परिवार-सूरत, जीवदया हेतु।

40,000/- श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, यादगिरी (कर्नाटक) संघ सहायतार्थ।

11,000/- श्री सुखपालचन्दजी, निर्मलजी, विमलजी, लोकेशजी, यशजी भण्डारी-चेन्नई। (साध्वीप्रमुखा शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा का सांसारिक परिवार) संघ सहायतार्थ।

5,100/- श्रीमती सौभाग्यवतीजी एम. पुष्पाजी श्री ललितकुमारजी ऋषभकुमारजी मनीषकुमारजी एवं समस्त गोलेच्छा परिवार, ब्यावर (राज.) (श्री महेन्द्रकुमारजी गोलेच्छा के 5.12.2016 को स्वर्गगमन पर उनकी पावन स्मृति में जीवदया हेतु)।

5,000/- श्रीमती पुष्पाजी लोढ़ा-जोधपुर संघ सहायतार्थ।

5,000/- श्रीमती लाडकंवरबाईजी धर्मपत्नी स्व. श्री मांगीलालजी कोठारी (साध्वीप्रमुखा शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. की सांसारिक बहिन), चेन्नई, श्री प्रकाशचन्दजी कोठारी, चेन्नई, जीवदया हेतु।

1,100/- श्री जसवन्तराजजी, अमनजी गांग-जोधपुर जीवदया हेतु।

अ.भा.श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड हेतु साभार प्राप्त

5,000/- श्री उत्तमचन्दजी, रोशनजी, रौनकजी भण्डारी, चेन्नई, महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. के सांसारिक परिवार से।

1,100/- श्री दिलखुशराजजी मेहता, मुम्बई, सहयोग हेतु।

गजेन्द्र निधि द्वारा आचार्य हस्ती स्कॉलरशिप फण्ड

(अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद् द्वारा क्रियान्वित)

दानदाता एवं दान एकत्रित करने वालों की सूची

51,000/- श्री प्रवीणजी, संगीताजी, श्रेयाजी, आर्यनजी कर्णावट एवं कर्णावट परिवार, उदयपुर, संस्कारप्रदाता, दृढ़धर्मी सुश्रावक स्व. श्री चाँदमलजी कर्णावट एवं सुश्राविका स्व. हुकुमकुंवरीजी कर्णावट की पुण्य स्मृति में।

48,000/- श्रीमती रूपदेवीजी चोरडिया, जयपुर, (तत्त्वचिन्तिका व्याख्यात्री महासती श्री रतनकंवरजी म.सा. का सांसारिक परिवार।) द्वारा सहयोग।

छात्रवृत्ति-योजना में इच्छुक दानदाता एक छात्र के लिए 12000/- रु. अथवा उनके गुणक में जितनी छात्रवृत्तियाँ देना चाहें तदनुसार दानराशि 'गजेन्द्र निधि आचार्य हस्ती स्कॉलरशिप फण्ड' योजना के नाम चैक या ड्राफ्ट(Donations to Gajendra Nidhi are exempted u/s 80G of IncomeTax Act 1961) से निम्नांकित पते पर भेजने का कष्ट करें- ***Sh. M. Harish Kawad**, No. 5, Car Street, Poonamallee, Chennai-600056(T.N.) (Mob. 9543068382)*

जय गुरु हस्ती ||GURUDEV|| जय गुरु हीरा-मान

गुरु हस्ती के दो फरमान
सामायिक स्वाध्याय महान

गुरु हीरा का यह सन्देश
व्यसन मुक्त हो देश विदेश

UDAY GROUP

UDAY INDUSTRIES CHENNAI PVT. LTD.

IMPORT & EXPORT AND DEALERS OF IRON & STEEL
LONG & FLAT PRODUCTS

UDAY CONSULTS LLP

OVERSEAS AND DOMESTIC MANPOWER RECRUITMENT
AND
FACILITY MANAGEMENT

CONNECTING BRIGHT TALENT WITH THE RIGHT COMPANY

STEEL | LOGISTICS | MANPOWER

WITH BEST COMPLIMENTS from:
G R SURANA & RAJESH SURANA
No.10&11, Jawaharlal Nehru Road,
Koyambedu, Chennai - 600 107.
Mobile No: 9940566666, Contact No: 044-24797675
Website: www.udaygroup.net
Mail Id: industries@udaygroup.net

भण्डारी हॉस्पिटल एण्ड रिसर्च सेन्टर

(आपके स्वास्थ्य के साथ हमेशा)

Since 1986

राजस्थान व पड़ौसी राज्यों में लेजर, लैप्रोस्कोपी एवं लिथोट्रिप्सी
का सर्वश्रेष्ठ एवं विश्वसनीय सेन्टर

~ अस्पताल की विशेषताएं ~

दूरबीन पद्धति से पेट, अपेन्डिक्स, हर्निया, प्रोस्टेट, पाइल्स आदि की शल्य चिकित्सा की सुविधा।

शरीर में किसी भी स्थान पर होने वाली पथरी के ईलाज का सर्वश्रेष्ठ संस्थान।

स्त्री रोग, नॉर्मल, सिजेरियन व हाई रिस्क डिलेवरी का अग्रणीय संस्थान।

विशेषज्ञों की सेवायें

- मूत्र व पथरी रोग
- पेट, लीवर व आंत रोग
- जनरल व मोटापा निवारण सर्जरी
- स्त्री रोग
- जनरल फिजिशियन
- प्लास्टिक व कॉस्मेटिक सर्जरी
- बाल रोग एवं बाल शल्य चिकित्सा
- न्यूरो सर्जरी
- दन्त रोग
- नाक, कान व गला रोग
- चर्म रोग

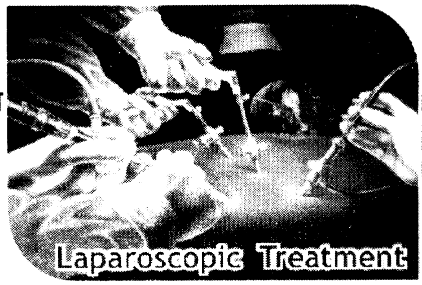

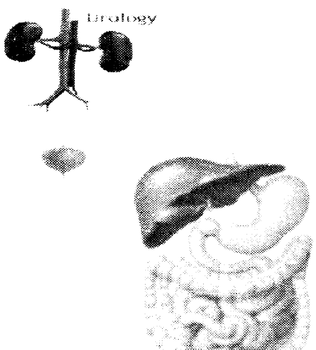

सुविधायें

- 30 वर्ष का अनुभव
- 4 लाख से अधिक रोगियों का सफल ईलाज
- 2 लाख से अधिक रोगियों का शल्य क्रिया द्वारा उपचार।
- 50,000 से अधिक पथरी रोगियों का उपचार।
- NABH & NABL से मान्यता प्राप्त।
- MLC (Medico Legal Case) की सुविधा
- 24x7 ICU, Emergency Facilty

CGHS, ECHS, ESIC, NPCIL (Rawatbhata), BSNL, BHEL, GAIL, IOCL, CWC, FCI, NFL, MNIT, CIPET, CSWRI, HCL, AAI, Coal India, CISF (8th RES BN), Rajasthan University, केन्द्र व राजस्थान सरकार के सभी कर्मचारी व पेंशनर्स एवं सभी प्रमुख TPA व इंश्योरेंस कंपनीयों से ईलाज हेतु अधिकृत

138-ए, वसुन्धरा कॉलोनी, गोपालपुरा बाईपास, टोंक रोड़, जयपुर - 302018
फोन: 0141-2703851-52 (मो.) 9660006228, 9829770055

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

साधना के मार्ग में प्रगतिशील वही बन सकता है,
जिसमें संकल्प की दृढ़ता हो।

– आचार्य श्री हस्ती

C/o CHANANMUL UMEDRAJ
BAGHMAR MOTOR FINANCE
S. SAMPATRAJ FINANCIERS
S. RAJAN FINANCIERS

 # 218, Ashoka Road, Lashkar Mohalla,
Mysore-570001 (Karanataka)

With Best Compliments from :

C. Sohanlal Budhmal Sampathraj Rajan
Abhishek, Rohith, Saurabh, Akhilesh Baghmar

Tel. : 821-4265431, 2446407 (O)
Mo. : 9845126407 (B), 9845580407 (S), 9845113334 (R)

Gurudev

Committed to Quality Committed to You

SURANA™

yes, the best TMT RE-BARS

CUSTOMER GUARANTEED SATISFACTION

DRI Plant

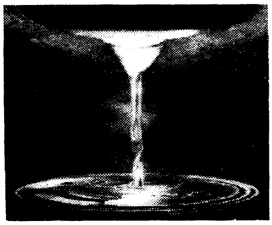
Electric Arc Furnace

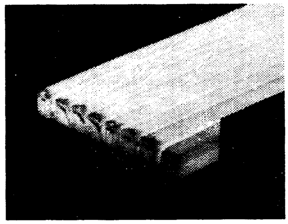
Billets

Rolling Mill

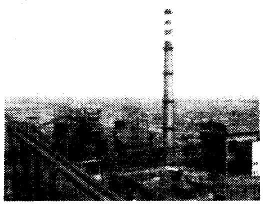
Captive Power Plant

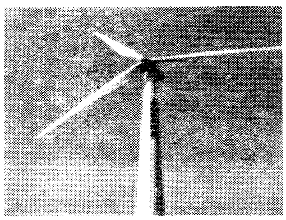
Windmill

With best wishes from

ISO 9001-2008

SURANA INDUSTRIES LIMITED

INTEGRATED STEEL PLANT

MANUFACTURE OF TMT BARS AND ALL KIND OF ALLOY STEEL

29, Whites Road, II Floor, Royapettah, Chennai 600 014/ Ph : 044-28525127 (3 lines) 28525596. Fax: 044-28521143

Email: steelmktg@suranaind.com / www.surana.org.in

STEEL I POWER I MINING

।। श्री महावीराय नम: ।।

हस्ती-हीरा जय जय !

हीरा-मान जय जय !

छोटा सा नियम धोवन का।
लाभ बड़ा इसके पालन का।।

अखण्ड बाल ब्रह्मचारी चारित्र चूड़ामणि, भक्तों के भगवान् 1008
श्री हस्तीमल जी म.सा. के चरणों में हृदय की असीम आस्था से समर्पण
उनके अनमोल खजाने के हीरे-मोती जन-जन के तारणहार
पूज्य आचार्य प्रवर 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा.,
पण्डित रत्न उपाध्याय प्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा.
एवं समस्त

रत्नाधिक साधु साध्वी मण्डल

के चरण कमलों में भावभरा कोटिश: वन्दन एवं समर्पण...

OUR HUMBLE SALUTATIONS TO THE MOST NOBLE SOULS

PRITHVIRAJ PREM KUMAR KAVAD
690, Trunk Road, Poonamallee, Chennai - 600 056
Ph. 044-26272196 Mob. : 93810-07273

MANGILAL HARISH KUMAR KAVAD
GURU HASTI THANGA MAALIGAI
(JEWELLERS & BANKERS)
5, Car Street, Poonamallee, Chennai-600 056
Ph. : 044-26272609 Mob. : 95-00-11-44-55

गजेन्द्र निधि द्वारा संचालित

आचार्य हस्ती मेधावी छात्रवृत्ति योजना

उज्ज्वल भविष्य की ओर एक कदम.......

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ

आदरणीय रत्नबंधुवर,

छात्रवृत्ति योजना की निरन्तर गतिशीलता के लिए सदस्यता अभियान से जुड़िये। सदस्यता अभियान का प्रारूप इस प्रकार है –

आचार्य हस्ती मेधावी छात्रवृत्ति योजना

उज्ज्वल भविष्य की ओर एक कदम.......

सदस्यता अभियान

हीरक स्तम्भ सदस्य (5 लाख रुपये प्रति वर्ष)

स्वर्ण स्तम्भ सदस्य (1 लाख रुपये प्रति वर्ष)

नोट-सदस्यता को ग्रहण करने वाले सभी सदस्यों का नाम जिनवाणी पत्रिका में प्रति माह प्रकाशित किया जायेगा।

Acharya Hasti Scholarship Fund

Ujjawal Bhavishya Ki Aur Ek Kadam..........

Your Contribution Towards This Noble Cause Will Go A Long Way In Lighting The Lamp Of Knowledge To Deserving and Intelligent Students, Hence We Kindly Request You To Contribute For This Noble Cause.

Note-The Fund Acknowledges Donation From Rs.3000/- Onwards. The Bank A/c Details is as follows -

A/c Name- Gajendra Nidhi Acharya Hasti Scholarship Fund
A/c No. 168010100120722
Bank Name & Address - AXIS BANK LTD. Anna Salai, Chennai(TN) IFSC Code - UTIB0000168
PAN No. - AAATG1995J
Note- Donation to Gajendra Nidhi are exempted u/s 80G of Income Tax Act 1961.

- **For Scholarship Fund Details Please Contact M.Harish Kavad, Chennai (+91 95001 14455)**

छात्रवृत्ति योजना में सदस्यता अभियान के सदस्य बनकर योजना की निरन्तरता को बनायें रखने में अपना अमूल्य योगदान कर पुण्यार्जन किया, ऐसे संघनिष्ठ, श्रेष्ठीवर्यों के नामों की सूची –

हीरक स्तम्भ सदस्य (5 लाख रुपये प्रति वर्ष)	स्वर्ण स्तम्भ सदस्य (1 लाख रुपये प्रति वर्ष)
श्रीमान् मोफतराज जी मुणोत, मुम्बई।	श्रीमान् दूलीचंद बाघमार एण्ड संस, चैन्नई।
युवारत्न श्री हरीश जी कवाड़, चैन्नई।	श्रीमान् दलीचंद जी सुरेश जी कवाड़, पून्नामल्लई।
श्रीमान् राजीव जी नीता जी डागा, ह्यूस्टन	श्रीमान् राजेश जी विमल जी पवन जी बोहरा, चैन्नई।
श्रीमान् रिखबचंद सा सुखानी, रायचूर (कर्नाटक)	श्रीमान् गणपत जी हेमन्त जी बाघमार, चैन्नई।
	श्रीमान् प्रेम जी कवाड़, चैन्नई।
	गुप्त सहयोगी, चैन्नई।

सहयोग के लिए चैक या ड्राफ्ट कार्यालय के इस पते पर भेजें–

M. Harish Kumar Kavad - 5, Car Street, Poonamallee, **CHENNAI-600056** (TN)

छात्रवृत्ति योजना से संबंधित जानकारी के लिए सम्पर्क करें– मनीष जैन, चैन्नई (Mob. +91 95430 68382)

'छोटा सा चिन्तन परिग्रह को हल्का करने का, लाभ बड़ा गुरु भाइयों को शिक्षा में सहयोग करने का'

Jai Guru Heera *Jai Guru Hasti* *Jai Guru Maan*

।। जैनं जयति शासनम्।।

With Best Compliments from:

Dharamchand Paraschand Exports
Paras Chand Hirawat
CC 3011-3012, Bandra Kurla Complex, Bandra (E),
Mumbai-400 098 (MH)
Tel. : +91 22 4018 5000
Email : dpe90@hotmail.com

KANTILAL SHANTILAL RAJENDRA LUNKER
PACHPADRA-PALI-ERODE
K.L. ASSOCIATES
'Sanskar', 177-B, Adarsh Nagar, Pali-306401 (Raj.)
Mobile : 094141-22757
135, N.M.S. Compound, ERODE-638001 (T.N.)
Tel. : 3205500 (O), Mobile : 093600-25001

BHANSALI GROUP
Dhanpatraj V. Bhansali
BHANSALI DEVELOPERS
Sharda Bhawan, 2nd Floor, Nandapatkar Road, Vile Parle (E),
Mumbai-400057 (MH) Tel. : 26185801, 32940462 (O),
E-mail : bhansalidevelopers@yahoo.com

S.D. GEMS & SURBHI DIAMONDS
Prakash Chand Daga
Virendra Kumar Daga (Sonu Daga)
FC51, Bharat-Diamond Bourse,
Bandra Kurla Complex,
Bandra (E), Mumbai-400098 (MH)
Ph. : 022-23684091, 23666799 (o), 022-28724429
Fax : 22-40042015, Mobile : 098200-30872
E-mail : sdgems@hotmail.com

Basant Jain & Associates, C.A.
BKJ & Associates, C.A.
BKJ Consulting Pvt. Ltd.,
Megha Properties Pvt. Ltd.
Ambition Properties Pvt.Ltd.
बसंत के जैन
अध्यक्षः श्री जैन रत्न युवक परिषद, मुम्बई
ट्रस्टी : गजेन्द्र निधि ट्रस्ट
601, Dalamal Chambers, New Marine Lines,
Mumbai - 400020 (MH)
Ph. : 022-22018793, 22018794 (o), 022-28810702

NARENDRA HIRAWAT & CO.
N.H. Studios ***Launches*** ***N.H. Jewells***
A-1502, Floor-15th, Plot-FP616(PT), Naman Midtown, Senapati Bapat Marg,
Near Indiabulls, Elphinstone (W), Mumbai-400013 (MH)
Web. www.nhstudioz.tv, Tel. : 022-24370713

!!Jai Guru Heera!! !!Jai Guru Hasti!! !!Jai Guru Man!!

LIFE
SHOULD NOT
ONLY BE LIVED,
IT SHOULD BE
CELEBRATED!

With best compliments from:

C. R. Kothari & Sons Group of Companies
Stock Broking - DP-CDSIL-NBFC-Solar Power

Mumbai - Baroda - Jaipur - Ajmer

Pradeep Kothari
Sanjay Kothari

Hemant Kothari
Alok Kothari

स्वामी सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के लिए प्रकाशक, मुद्रक - विनय चन्द डागा द्वारा दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर राजस्थान से मुद्रित एवं सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, शॉप नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर-3 राजस्थान से प्रकाशित। सम्पादक-डॉ. धर्मचन्द जैन